मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 121 ● वर्ष 13, अंक 6 ● अगस्त 2023 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

# मज़दूर बिगुल

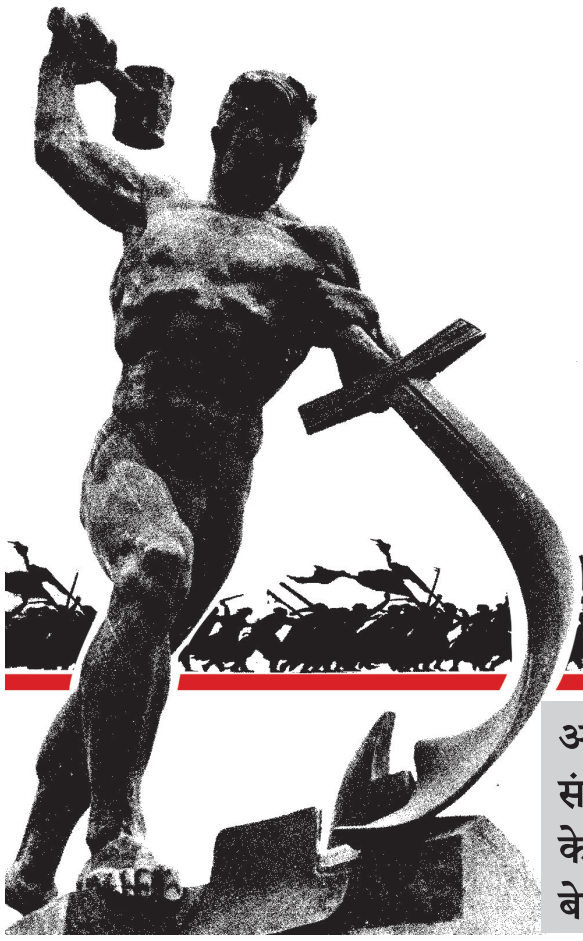


आँगनवाड़ीकर्मियों के संघर्ष ने बुर्जुआ न्यायतन्त्र के चेहरे को भी किया बेनक़ाब! 3

विपक्ष का नया गठबन्धन 'इण्डिया' और मज़दूर वर्ग का नज़रिया 11

मज़दूर आन्दोलन में मौजूद किन प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग का लड़ना ज़रूरी है? 12


## आगामी विधानसभा चुनावों और 2024 के लोकसभा चुनाव में हार की आशंका से घबरायी मोदी-शाह सरकार और भाजपा देश को दंगों की आग में झोंकने की तैयारी में

## नूह की घटना बस एक शुरुआत है!

## मेहनतक़श दोस्तो! मज़दूर साथियो! छात्रो-नौजवानो! सावधान!

### साम्प्रदायिकता, धार्मिक उन्माद और अन्धराष्ट्रवाद के फ़र्ज़ी शोर में क़तई नहीं बहना है!

### बेरोज़गारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, आवास, शिक्षा के मसले पर सभी धर्मों व समुदायों के मेहनतकश लोगों की जुझारू एकजुटता क़ायम करनी है!

**सम्पादकीय अग्रलेख**

क्या आपने कभी सोचा है कि जब भी भाजपा चुनावों में हार की आशंका से त्रस्त होती है, उसी समय देश में जगह-जगह दंगे और साम्प्रदायिक तनाव क्यों भड़क जाते हैं? याद करें। राम मन्दिर आन्दोलन की शुरुआत और रथयात्रा की शुरुआत भी राज्यों या केन्द्र के चुनावों के ठीक पहले की गयी थी। कारगिल घुसपैठ और युद्ध भी चुनावों के ठीक पहले हुआ था। 2002 में गुजरात दंगे भी राज्य के चुनावों के ठीक पहले हुए थे। आज भी हर चुनाव के पहले धार्मिक त्योहारों को दंगे के त्योहारों में तब्दील करने के लिए आर.एस.एस. और उसकी गुण्डा-वाहिनियाँ लगी रहती हैं। इसी साल मार्च-अप्रैल में रामनवमी के मौके पर दंगे फैलाने के कारण भी लगभग एक दर्जन लोग मारे गये थे। बताने की ज़रूरत नहीं है कि ये मारे जाने वाले लोग कोई धन्नासेठों, मालिकों, ठेकेदारों और धनी दुकानदारों की औलादें नहीं थीं, बल्कि आपके और हमारे परिजन थे। वजह यह कि जब धर्म का उन्माद भड़काया जाता है, तो हम मज़दूरों-मेहनतकशों को उसमें प्यादों की तरह इस्तेमाल किया जाता है क्योंकि हममें से कुछ लोग "धर्म की रक्षा", "धर्म-ध्वजा रक्षा", "धर्म का अपमान", "राम का अपमान" जैसी बेवकूफ़ी की बातों में बह जाते हैं।

आज के समाज में हम मज़दूरों-मेहनतक़शों को अन्याय, असमानता, अपमान का रोज़-रोज़ सामना करना पड़ता है। हमारी ज़िन्दगी दुखों-तक़लीफ़ों से भरी होती है। ऐसे में, जब हमें अपनी आँखों के सामने कोई विकल्प या समाधान नज़र नहीं आता तो हम अपनी दुख की आह-कराह को अभिव्यक्त करने धर्म की शरण में जाते हैं और उम्मीद करते हैं कि "ऊपरवाला हमारा इहलोक नहीं, तो परलोक तो सुधार ही देगा!" **यह हमारे पिछड़ेपन की निशानी है, यह हमारी अशिक्षा और अतार्किकता की निशानी है, यह हममें वर्ग चेतना की कमी की निशानी है कि हम अपने हालात**

(पेज 9 पर जारी)

## मणिपुर में बर्बरता के लिए कौन है ज़िम्मेदार?

### भारतीय राज्यसत्ता और मणिपुर व केन्द्र की सत्ता पर क़ाबिज़ फ़ासिस्ट भाजपा की डबल इंजन सरकार!

● आनन्द

मणिपुर में कुकी समुदाय की दो महिलाओं को निर्वस्त्र करके परेड कराने की वीभत्स घटना का वीडियो वायरल होने के बाद मणिपुर एक बार फिर से सुर्ख़ियों में आ गया है। इस घटना के बाद देशभर में पैदा हुए आक्रोश के मद्देनज़र नरेन्द्र मोदी को भी 79 दिन बाद बाद अपनी चुप्पी तोड़ने पर मजबूर होना पड़ा और उच्चतम न्यायालय ने भी मामले का संज्ञान लेते हुए केन्द्र सरकार को सख़्त क़दम उठाने की हिदायत दी। लेकिन सवाल यह उठता है कि इस देश के फ़ासीवादी हुक्मरान पिछले ढाई महीने से क्या कर रहे थे? क्या उन्हें यह पता नहीं था मणिपुर में क्या हो रहा है? क्या वे इस प्रकार के वीभत्स वीडियो के सामने आने का इन्तज़ार कर रहे थे?

ग़ौरतलब है कि मणिपुर में पिछले 3 मई से ही भीषण हिंसा, रक्तपात और तबाही का मंज़र क़ायम है। ख़ुद मणिपुर के मुख्यमंत्री ने माना कि हत्या, बलात्कार और आगज़नी की घटनाओं की सैकड़ों एफ़आईआर दर्ज हैं। वीडियो वाली घटना सहित बलात्कार और हत्या की कई घटनाओं की ब्यौरेवार जानकारी मणिपुर के एक संगठन ने राष्ट्रीय महिला आयोग को 12 जून को ही भेजी थी जिसकी अध्यक्ष रेखा शर्मा भाजपा से ही जुड़ी रही हैं।

इस बीच इस देश के बेशर्म प्रधानमन्त्री को अमेरिका और फ्रांस जैसे देशों में जाकर वहाँ के हुक्मरानों से अपनापन ज़ाहिर करने और मिस्र के पिरामिडों के साथ फ़ोटो खिंचाने का वक़्त मिल गया, लेकिन वह देश के भीतर चले रहे इस भीषण रक्तपात व यौन हिंसा पर आपराधिक चुप्पी साधे रहा। वीडियो वायरल होने के बाद जब उसने चुप्पी तोड़ी भी तो केवल उस एक घटना के बारे में बात की और मणिपुर में ढाई महीने से जारी भीषण

(पेज 8 पर जारी)

**बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!**

## 'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

**'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से हमारी अपील है कि अगर आप इस अख़बार को ज़रूरी समझते हैं और जनता का अपना मीडिया खड़ा करने के जारी प्रयासों की इसे एक ज़रूरी कड़ी मानते हैं, तो इसे जारी रखने में हमारा सहयोग करें।**

**1. 'मज़दूर बिगुल' की वार्षिक, पंचवर्षीय या आजीवन सदस्यता ख़ुद लें और अपने साथियों को दिलवायें।**

**2. अगर आपकी सदस्यता का समय बीत रहा है या बीत चुका है, तो उसका नवीनीकरण करायें।**

**3. अख़बार के वितरक बनें, इसे ज़्यादा से ज़्यादा मेहनतकश पाठकों तक पहुँचाने में हमारे साथ जुड़ें। (प्रिण्ट ऑर्डर बढ़ने से लागत भी कुछ कम होती है।)**

**4. अख़बार के लिए नियमित आर्थिक सहयोग भेजें।**

हमें जनता की ताक़त पर भरोसा है और हमारे अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि बिना कोई समझौता किये, एक विचार के ज़रिए जुड़े लोगों की साझा मेहनत और सहयोग के दम पर बड़े काम किये जा सकते हैं। इसी ताक़त के सहारे 'बिगुल' 1996 से लगातार निकल रहा है और यह यात्रा आगे भी जारी रहेगी। हमें विश्वास है कि इस यात्रा में आप हमारे हमसफ़र बने रहेंगे।

*"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"* – **लेनिन**

**'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।**

**यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।**
**बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।**
**सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।**

**प्रिय पाठको,**

**अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।**

**मनीऑर्डर के लिए पता :**

**मज़दूर बिगुल,**
**द्वारा जनचेतना,**
**डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

**बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul**
**खाता संख्या : 0762002109003787,**
**IFSC: PUNB0185400**
**पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ**

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

**मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :**
**फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)**
**ईमेल : bigulakhbar@gmail.com**
**फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul**

### मज़दूर बिगुल के सभी पाठकों के सूचनार्थ

मज़दूर बिगुल के फेसबुक पेज (facebook.com/mazdoorbigul) को किसी विदेशी हैकर ने हैक कर लिया है और उस पर कुछ फ़ालतू पोस्ट करना भी शुरू कर दिया है। हमारी कोशिश है कि इसे जल्द से जल्द रिकवर कर लिया जाए लेकिन इस प्रक्रिया में कुछ दिनों का समय लग जाता है। आपसे आग्रह है कि जब तक यह पेज फिर से हमारे नियंत्रण में नहीं आ जाता, तब तक इस पेज से आने वाली पोस्ट को इग्नोर करें। उन पर लाइक या कमेंट बिल्कुल ना करें।

### मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
### www.mazdoorbigul.net

**इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।**
**मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।**
**आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :**
**www.facebook.com/MazdoorBigul**

**कौन आज़ाद हुआ?**
**किसके माथे से सियाही छूटी**
**मेरे सीने में अभी दर्द है महकूमी का**
**मादर-ए-हिन्द के चेहरे पे उदासी है वही**
**– अली सरदार जाफ़री**

### 'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

**1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।**

**2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।**

**3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।**

**4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।**

**5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।**


### मज़दूर बिगुल

| | |
|---|---|
| सम्पादकीय कार्यालय | : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853476339 |
| दिल्ली सम्पर्क | : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोनः 9289498250 |
| ईमेल | : bigulakhbar@gmail.com |
| मूल्य | : एक प्रति – 10/- रुपये<br>वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित)<br>आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये |

# दिल्ली के सरकारी स्कूलों को बदलने के हवाई दावों के बाद आयी आँगनवाड़ी केन्द्रों की बारी!
## आँगनवाड़ीकर्मियों को बेगार खटवाने के लिए सदैव तत्पर केजरीवाल सरकार!!
## आँगनवाड़ी कर्मियों को ग़ैरक़ानूनी रूप से टर्मिनेट करने वाले केजरीवाल के लाभार्थियों के लिए दावे झूठे हैं!!!

**• वृषाली**

दिल्ली सरकार ने 20 जुलाई को दिल्ली के त्यागराज स्टेडियम में समेकित बाल विकास परियोजना के कर्मियों को बुलाकर एक "बड़ा क़दम" उठाने का फ़ैसला सुनाया था। दिल्ली सरकार के मुख्यमन्त्री और शिक्षामन्त्री ने एक शैक्षिक किट का अनावरण करते हुए कहा कि आँगनवाड़ी केन्द्रों में अब केवल पोषण ही नहीं, बल्कि प्री-स्कूलिंग (स्कूल भेजने से पहले प्री-स्कूल की बुनियादी शिक्षा) की व्यवस्था पर भी ध्यान दिया जायेगा। इसी के मद्देनज़र न केवल सभी आँगनवाड़ी केन्द्रों में इस किट को उपलब्ध कराया जायेगा ताकि बच्चों का सर्वांगीण विकास हो बल्कि आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण के लिए विदेश भी भेजा जायेगा। दिल्ली सरकार द्वारा उठाये जा रहे इस "अनूठे" क़दम का दिशा-निर्देश केन्द्र सरकार ने पिछले वर्ष ही दे दिया था। पिछले साल सितम्बर में ही केन्द्र सरकार की महिला एवं बाल विकास विभाग मन्त्री स्मृति ईरानी ने "पोषण भी, पढ़ाई भी" अभियान शुरू करने की घोषणा की थी। दरअसल, केन्द्र की मोदी सरकार हो या दिल्ली की केजरीवाल सरकार, जुमलों की बारिश दोनों ही सरकारें ताबड़तोड़ करती हैं!

आँगनवाड़ी केन्द्रों पर "शिक्षा व्यवस्था सुधारने" के पीछे की असल मंशा मोदी सरकार द्वारा लायी गयी नयी शिक्षा नीति के तहत प्राथमिक शिक्षा का भार भी काम के बोझ तले दबी हुई आँगनवाड़ी महिलकर्मियों को सौंपकर उनके सस्ते श्रम की लूट को बढ़ावा देना है। पोषाहार वितरण, नियमित सर्वे, बीएलओ, जानवरों के सर्वे, टीकाकरण इत्यादि ज़िम्मेदारियों के बाद अब आँगनवाड़ीकर्मी प्राथमिक शिक्षा देने का कार्यभार भी सँभालेंगी! अर्थात "स्वयंसेवा" के नाम पर दिये जा रहे मामूली मानदेय पर अब उन्हें सरकारी स्कूलों के शिक्षकों का काम भी निबटाना होगा! और सरकार शिक्षकों की छँटनी कर उनके काम कौड़ियों के दाम में आँगनवाड़ीकर्मी से करायेगी! केजरीवाल महोदय का कहना है कि दिल्ली के स्कूलों का जिस प्रकार आप सरकार ने "उद्धार" किया है उसी प्रकार अब आँगनवाड़ी केन्द्रों का भी "उद्धार" किया जाएगा! आम आदमी पार्टी के इस दावे कि पहले तथ्यों से जाँच कर लें कि दिल्ली के स्कूलों में क्या बदलाव आये हैं फिर दिल्ली सरकार के तहत समेकित बाल विकास परियोजना द्वारा दी जा रही सुविधाओं की हक़ीक़त पर भी चर्चा करेंगे।

2015 के अपने चुनावी घोषणापत्र में 'आप' ने वायदा किया था कि दिल्ली में 500 नये स्कूल खोले जायेंगे। एक आरटीआई के जवाब में मिली सरकारी जानकारी के अनुसार फ़रवरी 2015 से मई 2022 के दौरान दिल्ली में केवल 63 नये स्कूल खोले गये हैं। शिक्षा के लिए एकीकृत ज़िला सूचना प्रणाली (यूडीआईएसई) पर मौजूद डेटा के अनुसार दिल्ली सरकार के तहत आने वाले 1027 स्कूलों में केवल 203 स्कूलों में प्रधानाचार्य या कार्यकारी प्रधानाचार्य मौजूद हैं। एक के अन्य आरटीआई के अनुसार दिल्ली सरकार के तहत आने वाले स्कूलों में शिक्षकों के 50 फ़ीसदी पद खाली पड़े हैं। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार 40 फ़ीसदी स्कूलों में क्लासरूम की कमी है। अपने इसी मॉडल पर अपनी पीठ थपथपाते केजरीवाल महोदय ने इस साल की शुरुआत में 30 शिक्षकों को फ़िनलैण्ड भेजने की घोषणा की थी! पहले दिल्ली सरकार के स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं, शिक्षकों व कक्षा-कक्षों की उपलब्धता को दुरुस्त करने की बजाय केजरीवाल भी मोदी की तरह हवा-हवाई दावे करना और हवाई क़िले बनाने में माहिर है। है। जितना प्रभावशाली दिल्ली सरकार का यह 35 खिलौनों वाला किट नहीं है उससे ज्यादा इसका ढिंढोरा पीट दिया गया है।

दिल्ली में मौजूद तकरीबन 10,755 आँगनवाड़ी केन्द्रों के हालात भी कुछ अलग नहीं हैं। दिल्ली के आँगनवाड़ी केन्द्रों पर कार्यरत महिलाकर्मियों के हालात की चर्चा से पहले समेकित बाल विकास परियोजना द्वारा दी जा रही सुविधाओं की असलियत देखते हैं। दिल्ली के सभी आँगनवाड़ी केन्द्र किराये के कमरों में चलते हैं, जिनके किराये का भुगतान भी सही समय से नहीं होता है और ख़ामियाज़ा आँगनवाड़ीकर्मियों को भुगतना पड़ता है। आँगनवाड़ी केन्द्र में ज़रूरी बुनियादी चीज़ों का इन्तज़ाम भी अक्सर आँगनवाड़ीकर्मी अपने मामूली से मानदेय से करती हैं। इसका एक उदाहरण महिला एवं बाल विकास विभाग, दिल्ली सरकार द्वारा कोरोना के दौर में जारी किया एक अनौपचारिक ऑर्डर था, जिसके तहत आँगनवाड़ीकर्मियों को ख़ुद ही फ़ण्ड जुटाकर अपने इलाक़ों में मास्क और सैनिटाइज़र बाँटने को कहा गया था। अब केजरीवाल महोदय जिस 'खेल पिटारा' को बाँटकर ढिंढोरा पीट रहे हैं, वे आँगनवाड़ी केन्द्रों की बुनियादी ज़रूरत है जिसे मुहैया कराने में सरकार को इतना अधिक समय लगना ही नहीं चाहिए था! दिल्ली के आँगनवाड़ी केन्द्रों में आने वाले बच्चों के लिए सरकार अपनी तरफ से खिलौने व शिक्षा-सम्बन्धी संसाधन प्रदान करने के वक़्त हाथ खड़े कर लेती थी या आँगनवाड़ीकर्मियों को एनजीओ के भरोसे छोड़ दिया करती थी।

आँगनवाड़ी केन्द्रों को प्राथमिक शिक्षा की बुनियाद बनाने से पहले केजरीवाल महोदय को समेकित बाल विकास परियोजना की पोषाहार-सम्बन्धी मौजूदा ज़िम्मेदारियों की भी समीक्षा कर लेनी चाहिए। आँगनवाड़ी केन्द्रों में बाँटे जा रहे पके हुए भोजन की गुणवत्ता इतनी बेकार होती है कि ज़्यादातर लाभार्थी उसे लेने में भी हिचकते हैं। इण्डियन एक्सप्रेस की 2017 की एक ख़बर के अनुसार आँगनवाड़ी केन्द्रों में खाना सप्लाई करने वाले ऐसे तीन एनजीओ के पास आज भी आईसीडीएस के टेण्डर हैं जिनके वर्ष 2013 में ही सरकारी स्कूल के टेण्डर इसलिए ख़ारिज कर दिये गये थे क्योंकि खाने की गुणवत्ता असन्तोषजनक थी। हाल ही में किये एक अन्य सैम्पल सर्वे के दौरान 5 किचन की जाँच-पड़ताल की गयी जिनमें से 3 किचन में साफ-सफ़ाई और भोजन की गुणवत्ता चिन्ताजनक थी। यह अनायास ही नहीं है कि 5वें राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार दिल्ली में 5 वर्ष से कम के 21.8 प्रतिशत बच्चे सामान्य से कम वज़न वाले हैं, 15 से 49 वर्ष की 49.9 फ़ीसदी महिलाएँ खून की कमी से ग्रसित हैं और 6 से 59 माह के 69.2 फ़ीसदी बच्चे खून की कमी का शिकार हैं। कुपोषित और अविकसित बच्चों की जानकारी भी सरकार जिस प्रकार महिलाकर्मियों से ज़बरदस्ती तैयार करवाती है, उसके हिसाब से यह आँकड़े भी पूरी तस्वीर पेश नहीं करते हैं।

समेकित बाल बाल विकास परियोजना के नाम पर भारत सरकार विश्व बैंक से करोड़ों का फ़ण्ड लेती है। लेकिन देशव्यापी स्तर पर देखा जाये तो आँगनवाड़ी केन्द्रों में दी जाने वाली सुविधाएँ और केन्द्रों में कार्यरत महिलाकर्मियों, दोनों की ही स्थितियाँ प्रश्नों के घेरे में हैं। पहले से ही काम के बोझ तले दबी हुई आँगनवाड़ीकर्मियों से अब शिक्षक का काम भी लेकर उन्हें "स्वयंसेविकाओं" के अनुरूप मानदेय थमाया जायेगा। यही आँगनवाड़ीकर्मी जब अपने केन्द्रों पर बँटने वाले खाने की गुणवत्ता पर सवाल उठा देंगी तो इन्हें बर्ख़ास्त कर दिया जाएगा, वाजिब मेहनताना पाने का संघर्ष करेंगी तो उसे "हिंसक" घोषित कर दिया जाएगा। ज़ाहिरा तौर पर, समेकित बाल विकास परियोजना के लाभार्थियों को लेकर केजरीवाल की चिन्ता महज़ दिखावा है। आँगनवाड़ीकर्मियों को विदेशों में ट्रेनिंग के लिए भेजने से पहले दिल्ली सरकार को चाहिए कि जिन आँगनवाड़ी केन्द्रों पर सरकार की जन-विरोधी नीतियों की वजह से आँगनवाड़ीकर्मी ग़ैर-क़ानूनी रूप से बर्ख़ास्त हैं और लाभार्थी परेशान हैं, उनकी तुरन्त बहाली के लिए कदम उठाया जाये। दूसरा, कोरोना काल के बाद किचन से मिलने वाले घटिया गुणवत्ता के पोषाहार में सुधार किया जाये और आँगनवाड़ी केन्द्रों की आधारभूत संरचना में सुधार किया जाये। आँगनवाड़ी केन्द्रों का मौजूदा ख़स्ताहाल ढाँचा सुधारे बिना विदेशों के दौरे करवाना महज़ एक नौटंकी है।

# दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों का संघर्ष बुर्जुआ न्यायतन्त्र के चेहरे को भी कर रहा बेनक़ाब!
## पूँजीवादी न्याय व्यवस्था आमतौर पर पूँजीपतियों को न्याय और मज़दूरों-मेहनतकशों को अन्याय देने वाली व्यवस्था है!!

**• प्रियम**

दिल्ली की आँगनवाड़ी कर्मियों के ऐतिहासिक और जुझारू संघर्ष के बारे में हम 'मज़दूर बिगुल' के पन्नों पर पहले भी लिखते रहे हैं। 22,000 महिलाकर्मियों की 38 दिनों तक चली हड़ताल व उनके आन्दोलन ने जहाँ एक तरफ़ विधायिका और कार्यपालिका यानी विधानसभा, सरकार और समूची सरकारी मशीनरी के मज़दूर-विरोधी चेहरे को उजागर किया था वहीं दूसरी तरफ अब फ़र्जी बर्ख़ास्तगी के ख़िलाफ़ न्यायालय में चल रहे केस ने न्यायपालिका यानी कोर्ट के असल चरित्र को भी सामने ला दिया है।

**दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन** के नेतृत्व में चली इस हड़ताल को रोक पाने में असफल दिल्ली व केन्द्र सरकार ने 'हेस्मा' जैसे काले क़ानून के ज़रिए हड़ताल पर प्रतिबन्ध लगाया। वहीं दिल्ली सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग ने बदले की भावना से 884 महिलाकर्मियों को ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से बर्ख़ास्त कर दिया था। इन बर्ख़ास्तगियों के ख़िलाफ़ 15 मार्च 2022 को यूनियन द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय में केस दायर किया गया था। न्याय के मठ में अभी 884 महिलाओं कि बर्ख़ास्तगी पर कार्रवाई की प्रक्रिया बेहद धीमी गति से चल रही है। आपको बता दें कि दिल्ली सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग ने बर्ख़ास्तगी का कारण अधिकांश मसलों में हड़ताल में भागीदारी को बताया है। क्या मानदेय बढ़ोतरी के लिए हड़ताल करना जुर्म है? कानून और संविधान इसकी इजाज़त देता है कि कहीं भी श्रमिक अपनी माँगों के लिए हड़ताल कर सकते हैं। साफ़ है कि दिल्ली सरकार ने एक ग़ैर-क़ानूनी कार्रवाई की है और सारे सबूत इस ग़ैर-क़ानूनी कार्रवाई की साफ़ आवाज़ में गवाही दे रहे हैं। लेकिन पूँजीवादी न्यायपालिका अभी तक इस मसले को लटकाये हुए है। यहीं अगर किसी टाटा-बिड़ला, अम्बानी-अडानी के मुनाफ़े या धन्धे का मामला होता, तो सुप्रीम कोर्ट में आधी रात को दरवाज़ा खोल कर बैठ जाता है और तत्काल सुनवाई कर सुनिश्चित किया जाता है कि इन धनपशुओं की मुनाफ़ाखोरी के हक़ में पलभर का भी ख़लल न पड़ने पाये। लेकिन आँगनबाड़ीकर्मी ठहरी आम मेहनतकश औरतें! उनके लिए भला कोर्ट क्यों त्वरित कार्रवाई करने लगा?

अपनी जायज़ माँगों के लिए हड़ताल करना संवैधानिक है। अबतक इस केस की सुनवाई में 22 तारीखें पड़ चुकी हैं मगर बावजूद इसके पिछले लगभग एक साल से अधिक से कोर्टरूम में इस मसले पर "गम्भीर बहसें" चल रही हैं और तारीख़ पर तारीख़ देकर इसे पेचीदा बनाने की कोशिशें की जा रही हैं। वैसे तो, मज़दूरों के हक़ों को कुचलने के मामले में केन्द्र सरकार और दिल्ली सरकार बिना किसी वाद-विवाद के एकमत हो जाती हैं, मगर आँगनवाड़ी स्त्री कामगारों की बहाली की बात पर एक-दूसरे को ज़िम्मेदार ठहरा कर 'तू-नंगा, तू-नंगा' का खेल खेल रही हैं। दिल्ली में आँगनवाड़ी कर्मियों की भर्ती का काम दिल्ली सरकार करती है मगर केन्द्र सरकार जो कि "महिला सशक्तीकरण" के वायदे करती है और इनके नेता-मन्त्री जो कि आँगनवाड़ी कामगारों के प्रति अपनी "संवेदना" समय-समय पर ज़ाहिर करते रहते हैं, महिलाकर्मियों की बर्ख़ास्तगी रद्द करने का आदेश दिल्ली सरकार को क्यों नहीं देते हैं?? या फ़िर अदालत में 884 महिलाओं के प्रति अपनी इस "पवित्र संवेदना" को ज़ाहिर करते हुए यही कह देते कि इन्हें तुरन्त बहाल करने की माँग से उनकी सहमति है। ख़ैर, केन्द्र सरकार की इस मामले में

(पेज 4 पर जारी)

# दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों का संघर्ष बुर्जुआ न्यायतन्त्र के चेहरे को भी कर रहा बेनक़ाब!

(पेज 3 से आगे)

चुप्पी ने हमारे इस तर्क को और स्पष्ट कर दिया है कि सभी धन्नासेठों के वर्गों की चुनाबबाज़ पार्टियाँ मज़दूरों के ख़िलाफ़ एकमत हैं।

हालाँकि आँगनवाड़ी कर्मियों ने अपने संघर्ष के बूते कोर्ट से कुछ फौरी राहत ज़रूर हासिल की है जैसे कि बर्ख़ास्त कर्मियों की जगह पर नयी भर्ती पर रोक लगायी गयी है, शर्तों पर बहाली के ऑर्डर को नामंज़ूर किया है और कोर्ट में भी उसकी धज्जियाँ उड़ी हैं, मगर यह आमतौर पर होने वाली घटना नहीं है। हम जानते हैं कि इस देश की आम मेहनतकश जनता के जीवन से जुड़े बेहद ज़रूरी मसले सालों-साल तक चलते रहते हैं और फ़ैसला आने तक लोग उम्मीद त्याग चुके होते हैं। वैसे तो, मज़दूरों के लिए सुप्रीम कोर्ट या हाईकोर्ट तक पहुँच पाना ही एक सपना है! **अदालत इतनी कार्रवाई करने तक भी इसलिए पहुँची क्योंकि अदालत से बाहर आँगनवाड़ीकर्मियों का एक आन्दोलन और उनकी एक ताक़तवर यूनियन मौजूद है। इस दबाव के बिना इतनी कार्रवाई भी आँगनवाड़ी कर्मियों के पक्ष में न हो पाती।**

ख़ैर, आम जनता के मामलों में हमारे देश की न्यायपालिका की धीमी कार्यपद्धति के बारे में मेहनतकश जनता पहले से ही वाकिफ़ है। मज़दूरों और आम जनता से जुड़े मामलों के फ़ैसलों में कोर्ट की फ़ुर्ती शायद ही किसी को देखने को मिली हो। **हालाँकि यह बात आज बिलकुल सही है कि हड़तालों और मज़दूरों के अन्य संघर्षों को जब रोकने की बात आती है तो यही अदालतें स्वत: संज्ञान लेती हैं। इसका एक हालिया उदाहरण उत्तर प्रदेश के बिजलीकर्मियों की हड़ताल का है। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने इसी साल मार्च में बिजली कर्मचारियों की हड़ताल का संज्ञान लिया और उसे तुरन्त ख़त्म करने के आदेश जारी किये और यह तक कहा कि अगर हड़ताल रोकने में देरी होती है तो हड़ताली कर्मचारियों को इसकी सज़ा भुगतनी पड़ेगी। लेकिन मज़दूरों-कर्मचारियों की माँगों पर त्वरित सुनवाई हो इसका संज्ञान शायद ही कभी किसी कोर्ट ने लिया हो! ताज्जुब तो तब होता है जब यही न्याय का मन्दिर पैसेवालों के मसले में "विशेष सुनवाई" के नाम पर छुट्टियों के दिन भी फ़ैसले सुनाता है। कॉरपोरेट घरानों, बड़ी-बड़ी कम्पनियों और नेता-मन्त्रियों के लिए न्याय भी आसानी से उपलब्ध हो जाता है। हज़ारों लोग विचाराधीन क़ैदियों के तौर पर जेलों में सालों-साल से बन्द हैं जिनपर सुनवाई होने की कोई समय सीमा नहीं है लेकिन वहीं राजनीतिक संरक्षण प्राप्त आपराधिक तत्वों की रिहाई के लिए सभी क़ानून ताक पर रखकर फ़ैसले सुनाये जाते हैं। पिछले साल 15 अगस्त के दिन न्यायालय ने बिल्कीस बानो के अपराधियों को रिहा करके एक बार फिर इस बात को पुष्ट किया। 15 अक्टूबर को एक तरफ़ तो राजनीतिक बन्दियों की रिहाई नामंज़ूर की जा रही थी, वहीं दूसरी ओर डेरा सच्चा सौदा के प्रमुख गुरमीत राम रहीम को 40 दिन की पैरोल पर रिहा किया जा रहा था। यह वही राम रहीम है जिसने 2002 में दो पत्रकारों और 2021 में अपने आश्रम के प्रबन्धक की हत्या की थी, 2017 में अपने ही आश्रम की दो स्त्री अनुयायियों के साथ बलात्कार के जुर्म में दोषी पाया जा चुका है और इन संगीन जुर्मों के तहत वह अपराधी घोषित किया जा चुका है और 20 साल की सज़ा काट रहा है। लेकिन इसके बावजूद इस हत्यारे और बलात्कारी बाबा को बाहर घूमने की आज़ादी पर कोर्ट बिना कोई देरी किये फ़ैसला देती है।**

लेकिन जब बात 884 महिला कामगारों की रोज़ी-रोटी की होती है तब सच और न्याय तक पहुँचने में कोर्ट को सालों लग जाते हैं! इसी प्रकार मारुति के मज़दूरों को दशक से ऊपर का समय बीत जाने के बाद भी इन्साफ़ नहीं मिलता। ठेका मज़दूरों द्वारा स्थायी काम पर स्थायी रोज़गार की जायज़ व कानूनी माँग पर डाले गये केसों की सुनवाई होने में ही केस दायर करने वाले ठेका मज़दूर बूढ़े होकर मर जाते हैं। लेकिन जब पूँजीपतियों का मसला आता है, तो देश की न्यायपालिका उनके दरवाज़े पर जाकर "न्याय" देकर आती है। मौजूदा व्यवस्था के शीर्ष पर पूँजीपति वर्ग क़ाबिज़ है और अगर कुछ परतें और पर्दे उठाकर देखें तो हम मज़दूरों-मेहनतकशों व स्त्रियों को यह बात समझ में आ जायेगी। मौजूदा व्यवस्था में हमारे लिए न्याय नहीं है।

पूँजीवादी न्याय व्यवस्था की पक्षधरता के अनेकों उदाहरण हमें मिल जायेंगे।

आज के फ़ासीवादी दौर में न्याय का चेहरा और अधिक बेनक़ाब हुआ है। सत्ता पक्ष यानी भाजपा व संघ परिवार से जुड़े हत्यारों, दंगाइयों, बलात्कारियों, भ्रष्टाचारियों को कोई सज़ा नहीं मिलती है। अमित शाह, आदित्यनाथ से लेकर प्रज्ञा सिंह ठाकुर, अनुराग ठाकुर, कपिल मिश्रा, संगीत सोम, असीमानन्द "बाइज़्ज़त बरी" कर दिये जाते हैं और इनके ख़िलाफ़ दर्ज हत्याओं, दंगों, धार्मिक उन्माद फ़ैलाने, नफ़रती भड़काऊ भाषणों के तमाम मामले रातोंरात ग़ायब हो जाते हैं।

कुछ आँकड़ों के ज़रिए "महान न्याय व्यवस्था" की कार्यपद्धति को देखें तो तस्वीर और स्पष्ट होगी।

कानून मंत्री अर्जुन राम मेघवाल ने 20 जुलाई 2023 को राज्यसभा में लिखित तौर पर बताया कि 5.02 करोड़ केस हमारे देश की विभिन्न अदालतों में पेंडिंग है। डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में 4,41,35,357 केस, देश के 25 हाईकोर्ट में 60,62,953 और सुप्रीम कोर्ट में 69,766 केस फ़ैसले के इन्तज़ार में हैं। वहीं 2022 में संसद के शीतकालीन सत्र के दौरान गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री अजय कुमार मिश्रा ने बताया कि देश के 5,54,034 क़ैदियों में से 76% (4,27,165) विचाराधीन क़ैदी हैं, यानी जिन्हें कोई सज़ा नहीं हुई है बल्कि उनका मुक़दमा चल रहा है। इस 76% में से 66% लोग दलित, मुसलमान और अन्य दमित समुदायों से हैं।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार पिछले 10 वर्षों में जेलों में विचाराधीन क़ैदियों की संख्या लगातार बढ़ी है और 2021 में अपने चरम पर पहुँच गयी है। जेल में पड़े क़ैदियों का अधिकांश हिस्सा भी ग़रीब और मेहनतकश पृष्ठभूमि से आने वाले लोगों का है जो किसी छोटे-मोटे जुर्म में सज़ा काट रहे हैं।

उपरोक्त तथ्यों और उदाहरणों से भारतीय न्याय व्यवस्था का चरित्र और उसकी पक्षधरता साफ़ है। हमारे देश के ग़रीबों-मेहनतकशों के लिए न्यायालय पहुँचना और इंसाफ़ की उम्मीद लगाना एक सपने से अधिक कुछ नहीं है। दिल्ली की आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों के मसले से लेकर हम मारुति के मज़दूरों के मामले को उदाहरण के तौर पर देख सकते हैं। 884 महिलाकर्मी अलग-अलग रहकर बर्ख़ास्तगी के ख़िलाफ़ न्यायालय में लड़ाई जारी रखने का शायद ही सोच पातीं।

आपको बता दें कि मारुति के मज़दूर अपनी यूनियन पंजीकृत कराने और काम की अमानवीय स्थितियों को बदलने के लिए संघर्षरत थे। कम्पनी प्रबन्धन लगातार ही मज़दूरों की एकता तोड़ने की अलग-अलग तरीक़ों से कोशिश कर रहा था। इसी टकराव में मारुति के एचआर की मृत्यु के बाद हत्या का आरोप लगाकर संघर्षरत 148 मज़दूरों पर मुक़दमा किया गया, उनकी गिरफ़्तारी की गयी और उन्हें 4 साल से भी ज़्यादा समय के लिए जेल में बन्द रखा गया। कोर्ट की कार्रवाई के बाद 13 मज़दूरों को सज़ा दी गयी, यह बताने के लिए कि अगर आप पूँजीवादी मुनाफ़े के तन्त्र के रास्ते में आते हैं तो पूँजीवादी न्याय की देवी आपको नहीं बख़्शेगी।

**लेकिन, क्या आपने कभी सुना है कि आये दिन फैक्ट्री में होने वाले मज़दूरों की मौत पर किसी मालिक को सज़ा हुई हो? क्या आपने सुना है कि मज़दूरों के साथ अन्याय करने के लिए किसी अधिकारी या नेता-मन्त्री को सज़ा हुई हो? पिछले क़रीब डेढ़ वर्षों से भूख और बेरोज़गारी की मार झेलती आँगनवाड़ी महिलाओं की इस स्थिति की सज़ा किसको मिलेगी??**

क़ानून और न्याय सिर्फ़ मज़दूरों-मेहनतकशों को चुप कराने के लिए और यह बताने के लिए है कि अगर वे मालिकों और सरकार के ख़िलाफ़ बोलेंगे तो उनका यही हश्र होगा!!

मोदी सरकार के शासनकाल में तो न्यायपालिकाओं ने अपने पिछले सभी रिकॉर्ड ध्वस्त करते हुए मज़दूर-विरोधी फ़ैसले सुनाये हैं और अपनी "निष्पक्षता" को बख़ूबी साबित किया है!!

पूँजीवादी व्यवस्था में आम जनता के बीच यह विभ्रम कुछेक अपवादों के ज़रिए बनाकर रखा जाता है ताकि लोकतन्त्र के इस "पावन मन्दिर" में लोगों की आस्था बरकरार रहे। हालाँकि, यह बात अब आम जनता से छुपी नहीं है कि पूँजीवादी लोकतन्त्र में न्याय भी पैसे से ख़रीदी और बेची जाने वाली चीज़ है। स्कूल-कॉलेज में पढ़ते समय इंसाफ़ और न्याय के नाम पर कोर्ट-कचहरी में जो भरोसा पैदा किया जाता है वह वास्तविकता का सामना करते ही उड़नछू हो जाता है।

**हमें समझना होगा कि मुनाफ़े पर टिकी इस पूँजीवादी व्यवस्था में न्याय, इंसाफ़, जनवाद जैसी चीज़ भी निरपेक्ष नहीं हो सकती। इसका एक स्पष्ट वर्ग-चरित्र है। न्याय व्यवस्था आज पैसेवालों की बपौती है और इसकी वर्ग पक्षधरता साफ़ तौर पर पूँजीपतियों, मालिकों और सत्ताधारियों के लिए है। आज के फ़ासीवादी दौर में यह और नंगे रूप में काम कर रही है।** पूँजीपति वर्ग और विशेषकर बड़ी पूँजी की सेवा के लिए तमाम नियम-क़ानूनों में फेरबदल तो हो ही रहे हैं और इसके साथ-साथ मज़दूरों के अधिकारों को ख़त्म करने को क़ानूनी जामा पहनाया जा रहा है। कोई हड़ताल या आन्दोलन न उठ खड़ा हो इसके लिए न्यायपालिका की एक "फ़ुर्ती बेंच" हमेशा अलर्ट रहती है जो ऐसी किसी भी घटना पर स्वत: संज्ञान लेकर उसपर त्वरित कार्रवाई करती है!!

पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों पर टिका हुआ क़ानून, संविधान, न्याय व्यवस्था अन्तिम तौर पर पूँजीवादी आर्थिक आधार की रक्षा करता है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि यह निजी सम्पत्ति, पूँजीवादी सम्पत्ति सम्बन्धों व पूँजीवादी वितरण सम्बन्धों और उससे जुड़ी मूल्य-मान्यताओं की ही हिफ़ाज़त करता है और उसे क़ानूनी मान्यता और वैधीकरण प्रदान करता है और क़ानून के दायरे में इन सम्बन्धों का उत्पादन और पुनरुत्पादन भी करती है। हालाँकि, पूँजीवादी अधिरचना की आर्थिक मूलाधार से सापेक्षिक स्वायत्तता होती है और यही वजह है कि ये और अधिक वर्चस्वकारी बनते हैं। आम जनता के एक बड़े हिस्से के बीच अदालतों को लेकर जो भ्रम है वह इसी कारण पैदा होते हैं। उन्हें लगता है कि कहीं न्याय मिले न मिले, अदालतों में तो हमेशा न्याय मिलता है। इस बात को फिल्मों, मीडिया और अन्य विचारधारात्मक उपक्रमों के ज़रिए पूँजीवादी राज्यसत्ता लोगों के दिमाग़ों में बैठाने का काम करती है।

फ़ासीवाद के दौर में बुर्जुआ जनवाद का यह बचा-खुचा रूप भी बेपर्द हो जाता है। क़ानून की आँखों पर निष्पक्षता की नहीं बल्कि पूँजीपतियों-मालिकों के हितों की पट्टी बँधी हुई है। इस वर्ग-विभाजित समाज में क़ानून और न्यायपालिका का चरित्र और उसकी वचनबद्धता मज़दूरों-मेहनतकशों के पक्ष में हो भी नहीं सकती हैं। हमें इस गफ़लत से बाहर आ जाना चाहिए कि अदालतों में अन्ततोगत्वा न्याय मिलता ही है। **न्याय व्यवस्था की आँख मज़दूरों के पक्ष में तभी थोड़ी खुलती है जब सड़कों पर कोई जुझारू संघर्ष लड़ा जा रहा हो। आँगनवाड़ी स्त्री-कामगारों ने अपने आन्दोलन से इस बात को चरितार्थ किया है। आँगनवाड़ीकर्मियों ने व अन्य कामगारों ने जो भी थोड़े-बहुत हक़-अधिकार हासिल किये हैं वो अपने संघर्ष के दम पर ही हासिल किये हैं। बहाली की माँग को लेकर दिल्ली उच्च न्यायालय में चल रहे संघर्ष को भी गति देने के लिए अपने आन्दोलन को तेज़ करना ही आज एकमात्र रास्ता है। जब हम सड़कों पर अपनी आवाज़ बुलन्द करेंगे, तो ही न्यायपालिका को भी हमारी बात सुननी पड़ेगी। सड़कों पर सन्नाटा होगा, तो अदालतों में भी आम जनता के लिए अन्याय का सन्नाटा ही होगा।**

# प्रोटेरियल के पुराने ठेका मज़दूरों की हड़ताल की आंशिक जीत और आगे की चुनौतियाँ!

**• शाम**

प्रोटेरियल (इण्डिया) प्राइवेट लिमिटेड (पुराना नाम हिताची) का एक प्लाण्ट आईएमटी मानेसर, हरियाणा में स्थित है। इस प्लाण्ट में विभिन्न किस्म की मैगनेटिक कोर व ब्लॉक का उत्पादन होता है जिसका इस्तेमाल ऑटो सेक्टर, हवाई जहाज़ व इलेक्ट्रॉनिक आदि उद्योगों में किया जाता है।

### इस बार हड़ताल का कारण क्या था?

पिछली 30 जून को मज़दूरों ने प्रबन्धन द्वारा जबरन बिना उनकी सहमति के शिफ़्ट बदलने को लेकर विरोध किया और अगले दिन अपनी तय शिफ़्ट पर आये। इस पर प्रबन्धन ने 5 मज़दूरों को बिना कोई नोटिस दिये काम से निकाल दिया। इस तानाशाहाना रवैये के ख़िलाफ़ क़रीब 200 पुराने ठेका मज़दूरों ने कम्पनी परिसर के अन्दर ही दोपहर की 'बी' शिफ़्ट में टूल डाउन करके शॉप फ़्लोर पर ही धरना शुरू कर दिया था। बाक़ी के 60-70 पुराने ठेका मज़दूर फ़ैक्ट्री गेट के सामने धरने पर बैठे हुए हैं। कुल मिलाकर क़रीब 270 पुराने मज़दूर पिछले 9 दिनों से मारूति-सुज़ुकी कम्पनी के गेट नम्बर 3 के सामने वाली कम्पनी में प्रबन्धन की तानाशाही के ख़िलाफ़ डटे रहे हैं। फ़िलहाल समझौते होने व मज़दूरों को वापस काम पर लेने के बावजूद कुछ हद तक कम्पनी प्रबन्धन व ठेकेदार अभी भी उत्पादन के लक्ष्य (टारगेट) का बहाना बनाकर पूरे हफ़्ते बिना कोई साप्ताहिक अवकाश दिये काम करवा रहा है। वह मनमर्ज़ी से हर मज़दूर से अलग-अलग दिन व अलग-अलग शिफ़्ट में काम करवा रहा है।

ज्ञात हो कि हड़तालो मज़दूरों में 6 महीने से लेकर 12 साल पुराने क़रीब 270 पुराने ठेका मज़दूर शामिल थे। हड़ताल में शामिल न होने वाले मज़दूरों में क़रीब 44 स्थायी मज़दूर और 11 महीने वाले क़रीब 100 पुराने ठेका मज़दूर हैं। कुल मिलाकर यहाँ लगभग 400 मज़दूर कार्यरत हैं।

30 जून से 23 जुलाई तक 24 दिन की टूल-डाउन हड़ताल के बाद 24 जुलाई को समझौते के बाद मज़दूर काम पर वापस लौट आये थे। प्रोटेरियल के ठेका मज़दूरों की 24 दिन लम्बी हड़ताल एक हद तक सफल हुई और कुछ बुनियादी माँगों के लिए लिखित समझौता सम्भव हो पाया।

इस हड़ताल में मारुति-सुज़ुकी मज़दूर संघ (एम.एस.एम.एस.) का नेतृत्व तो आया लेकिन यूनियन के अपने अन्य साथियों को न ला पाया। आज एम.एस.एम.एस. समेत तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियन व उनसे जुड़ी यूनियनें अर्थवाद के चलते सिर्फ़ थी। लेकिन उस हड़ताल के चलते हुए श्रम विभाग की मध्यस्थता में हुए 12 (3) के समझौते को प्रबन्धन ने लागू नहीं किया जिसका गुस्सा मज़दूरों में पहले से ही था, जिसके कारण 30 जून को दूसरी बार टूल-डाउन हड़ताल के रूप मे मज़दूरों का ग़ुस्सा दोबारा फूटा।

**• ठेका प्रथा के ख़िलाफ़ यानी 'स्थायी काम पर स्थायी रोज़गार' और 'समान काम के लिए समान वेतन' के क़ानून-सम्मत अधिकार की माँग को लेकर संघर्ष जारी रहेगा!**
**• समझौते में हस्ताक्षरित माँगों को लागू करवाने और जो बातें माँगपत्रक के अनुसार फ़िलहाल समझौते में नहीं आयी हैं उनके लिए भी संघर्ष जारी रहेगा!!**
**• ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन (AICWU) संघर्ष में शुरू से अन्त तक शामिल रही है और आगे भी रहेगी!!!**

वेतन बढ़ोत्तरी, श्रम क़ानूनों के अनुसार छुट्टियाँ और निकाले गये मज़दूरों को काम पर वापस लेने जैसी बुनियादी माँगों पर आंशिक जीत संघर्ष की बदौलत ही हासिल हो पायी। लेकिन लिखित समझौते को सफलतापूर्वक लागू करवाने के लिए सतर्कता और सावधानी से लगातार डटे रहने की ज़रूरत है। साथ ही जो माँगें फ़िलहाल माँगपत्रक के अनुसार लिखित समझौते में नहीं आ पायी हैं उनके लिए भी एकजुट होकर संघर्ष जारी रखना होगा।

30 जून से लेकर 23 जुलाई तक चली हड़ताल में हर रोज़ सुबह और शाम शिफ़्ट बदलने के वक़्त प्रबन्धन, श्रम विभाग व हरियाणा सरकार के ख़िलाफ़ ज़ोरदार नारेबाज़ी की गयी। हड़ताल की शुरुआत के 15 दिनों के बाद ही कोर्ट ने इन मज़दूरों को उत्पादन क्षेत्र से बाहर जाने का आदेश दे दिया। लेकिन फिर भी मज़दूर फ़ैक्ट्री गेट के बाहर डटे रहे।

यह बात भी ग़ौरतलब है कि 44 स्थायी मज़दूर की पंजीकृत यूनियन (केन्द्रीय फ़ेडरेशन एचएमएस से सम्बन्धित) समझौतापरस्ती व मौक़ापरस्ती की नीति के कारण संघर्ष में शामिल नहीं हुई और उसके मज़दूर उत्पादन में लगे रहे। साथ ही, अभी हाल में ही भर्ती किये गये 11 महीने वाले लगभग 100 नये ठेका मज़दूर फ़िलहाल असंगठित होने के कारण और राजनीतिक चेतना की कमी के कारण हड़ताल में शामिल नहीं हुए।

परमानेंट मज़दूरों की बात करती हैं और ज़ुबानी तौर पर ठेका मज़दूरों की गाहे-बगाहे बात करने के बावजूद स्थायी मज़दूरों का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। स्थायी मज़दूरों को 90 फ़ीसदी से ज़्यादा ठेका मज़दूरों से जोड़ने की बजाय और उनकी माँगों को प्रमुखता देने की बजाय, वे उनके बीच की खाई को बनाकर रखती हैं। वे राजनीतिक तौर पर स्थायी मज़दूर आबादी के एक छोटे-से हिस्से की नुमाइन्दगी करती हैं, जो कुलीन श्रमिक संस्तर में तब्दील हो चुका है। मारूति के संघर्ष की 11वीं वर्षगाँठ पर गुड़गाँव में लघु सचिवालय पर प्रतीकात्मक धरना-रैली के बजाय इस यूनियन को मारूति के तीन नम्बर गेट पर बैठे मज़दूरों के समर्थन में मानेसर में रैली व रोष प्रदर्शन करना चाहिए था। केन्द्रीय ट्रेड यूनियन तो पहले से ही दक्षिणपन्थी अर्थवाद का शिकार हैं लेकिन इसमें "वामपन्थी" अर्थवाद के शिकार "सहयोगी" व "इन्क़लाबी" केन्द्र ट्रेड यूनियनवादी नीति की बानगी ही पेश कर रहे थे। याद रहे 11 वर्ष पहले मारूति के मज़दूर जिन माँगों के लिए संघर्ष कर रहे थे अधिकांश उन्हीं माँगों के लिए प्रोटेरियल के मज़दूर संघर्षरत हैं।

### पिछली बार की हड़ताल क्यों हुई थी?

इसी वर्ष पिछली बार 11-12 मई की डेढ़ दिन की टूल-डाउन हड़ताल दो नेतृत्वकारी साथियों को तानाशाहाना तरीके से काम से हटाने के कारण हुई

### श्रम विभाग, पुलिस-प्रशासन व न्यायालय का मज़दूर विरोधी रवैया:

30 जून से क़रीब 15 दिनों तक हड़ताली मज़दूर फ़ैक्ट्री के उत्पादन क्षेत्र में बैठे थे। प्रशासन ने मज़दूरों को वहाँ से बाहर करने का आदेश पारित कर दिया। नतीजतन मज़दूरों को कम्पनी के पार्किंग क्षेत्र में खुले आसमान के नीचे धूप-गर्मी व बारिश में 15 तारीख़ तक बैठना पड़ा। उसके बाद कुछ दिनों के बाद कोर्ट ने मज़दूरों को कम्पनी परिसर से भी बाहर करने का आदेश पारित कर दिया। जबकि हड़ताली मज़दूर न तो स्थायी मज़दूरों और न ही ठेका मज़दूरों के लिए किसी भी तरीके से उत्पादन करने में बाधा उत्पन्न कर रहे थे। ऐसे मांमलों में पुलिस-प्रशासन व न्यायपालिका का मज़दूर विरोधी रवैया दिख जाता है। जबकि इसी कारख़ाने में श्रम क़ानूनों का खुले तौर पर उल्लंघन किया जाता है – न तो मज़दूरों को न्यूनतम वेतन मिलता है, न ही पक्का काम। ज़्यादातर मज़दूर ठेके पर काम करते हैं, जो कि ग़ैर-क़ानूनी है। लेकिन इन सबकी जानकारी के बावजूद श्रम विभाग आँखें मूँद कर बैठा रहता है। तब कोई सरकारी विभाग, पुलिस, आदि नहीं आता। लेकिन मालिकों और प्रबन्धन के इशारे पर सरकारें, न्यायपालिका, श्रम विभाग सारे दौड़े आते हैं। यही मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था की सच्चाई है। इसमें मज़दूर के लिए कोई न्याय नहीं है।

### समझौते की प्रमुख माँगे:

पहली माँग वेतन बढ़ोतरी की थी। फ़िलहाल समझौते के तहत मज़दूरों के वेतन में ₹1500 रूपये बढ़ोतरी पर सहमति बनी। है। वेतन बढ़ोतरी बेसिक में नहीं बल्कि एचआरए में हुई है। जबकि मज़दूरों ने बढ़ती महँगाई के अनुसार ₹4000 बढ़ोतरी लागू करने की माँग की रखी थी। साथ ही यह बढ़ोतरी एक साल से कम समय से काम कर रहे ठेका मज़दूरों पर लागू नहीं होगी।

दूसरी माँग श्रम क़ानूनों के तहत छुट्टियाँ लागू करवाने की थी जिसके लिए फ़िलहाल प्रबन्धन तैयार है। लेकिन व्यवहार में यह देखना होगा यह कितना लागू किया जायेगा।

तीसरी माँग निकाले गये लगभग 30-40 मज़दूरों की पुनः कार्यबहाली की थी। फ़िलहाल तीन किस्तों में (178+22+22=222) करके पुन:बहाली (ज्वाइनिंग) पर सहमति बनी है।

मज़दूरों की यह आंशिक जीत यह दिखाती है कि अपनी वर्गीय एकजुटता और संघर्ष के ज़रिए अपनी माँगों को एक हद तक पूरा करवाया जा सकता है। ऑटोमोबाइल सेक्टर में यही एकजुटता अगर सेक्टर के आधार पर बनायी जाये तो इस सेक्टर में मज़दूर वर्ग अपने तमाम हक़ और अधिकार हासिल कर सकता है। और आज उत्पादन के विकेन्द्रीकरण के साथ मज़दूर वर्ग के संघर्ष के लिए सेक्टरगत यूनियन ही मुख्य रास्ता हैं। साथ ही, हमें यह समझना होगा कि आज ठेका मज़दूरों को अपना स्वतन्त्र संगठन खड़ा करना होगा और अपने माँगों के लिए सेक्टरगत आधार पर संघर्ष करना होगा। ऐसे में ही स्थायी मज़दूरों का संघर्ष भी पुनर्जीवित किया जा सकता है, दलाल यूनियनों को किनारे लगाया जा सकता है और ऑटोमोबाइल मज़दूरों का एक जुझारू आन्दोलन खड़ा किया जा सकता है।

# घरेलू कामगारों के विरुद्ध लगातर बढ़ते आपराधिक मामले

## दिल्ली में एक दस वर्षीय घरेलू कामगार लड़की के साथ मारपीट एवं प्रताड़ना की एक और शर्मनाक घटना

**• आशीष**

प्रमुख श्रम संगठनों के आँकड़ों के हिसाब से देशभर में लगभग पाँच करोड़ से अधिक घरेलू कामगार हैं जिसमें अधिकतर महिलाएँ हैं। इनमें लगभग दो-तिहाई शहरी इलाक़ों में हैं। नवउदारवाद की नीतियों को लागू करने के बाद घरेलू कामगारों की संख्या में एक सौ बीस फ़ीसदी बढ़ोतरी हुई है। कामगारों की इस आबादी की जीवन-स्थिति के बारे में आमतौर पर समाचार चैनलों और अख़बारों में चर्चा बेहद कम होती है। घरेलू कामगारों के विरुद्ध होने वाली किसी जघन्य घटना के बाद ही कोई बात हो पाती है। घरेलू कामगारों में नाबालिग बच्चों की काफ़ी संख्या है। दिल्ली की जिस भयानक घटना की हम बात करने जा रहे हैं, उसमें भी कामगार नाबालिग ही है।

दिल्ली के द्वारका में रहने वाले कौशिक बागची व पूर्णिमा बागची नामक एक दम्पत्ति अपने यहाँ काम करने वाली एक नाबालिग घरेलू कामगार को बुरी तरह प्रताड़ित करते थे। यह दम्पत्ति "सम्भ्रान्त" कहे जाने वाले लोग हैं। पूर्णिमा इण्डिगो एयरलाइंस में पायलट है और उसका पति कौशिक भी एयरलाइंस में कर्मचारी है। धन-दौलत की अकड़ में ऐसे लोग अमानवीयता की सारी हदें पार कर जाते हैं। इनके यहाँ वह लड़की पिछले दो महीने से काम कर रही थी। यह दम्पत्ति उस कामगार के साथ लगातार मारपीट करते थे। अभी हाल में ही फिर से जब ठीक से साफ़-सफ़ाई नहीं करने का आरोप लगाकर उसे बुरी तरह पीट रहे थे, तब उसी समय बगल से गुज़रते हुए लड़की के किसी परिजन ने उसकी चीख़ें सुन हल्ला मचाना शुरू किया और आसपास के लोगों को एकजुट किया। उस नाबालिग लड़की के शरीर पर मारपीट के काफ़ी निशान थे, आँखें सूजी हुई थीं और प्रेस से जलाये जाने के भी ज़ख्म थे। इस अमानवीय कृत्य का पता चलने पर गुस्साए लोगों ने मालकिन पूर्णिमा और उसके पति की जमकर पिटाई कर दी। इसके बाद आरोपी पति-पत्नी को गिरफ़्तार कर लिया गया है।

घरेलू कामगारों के साथ प्रताड़ना की यह कोई अकेली घटना नहीं है। देश के महानगरों में ऐसी घटनाओं की भरमार है। राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो के अनुसार घरेलू कामगारों के ख़िलाफ़ होने वाले अपराधों में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। हाल में ही गुड़गाँव में एक घरेलू कामगार महिला के साथ ठीक ऐसी ही घटना हुई थी। गुड़गाँव में

**(पेज 6 पर जारी)**

# बेटी बचाओ... भाजपाइयों और संघियों से

**• अजित**

भाजपाइयों और संघियों का असल चाल, चेहरा और चरित्र एक बार फिर सामने आया है। इनके संस्कारों को एक बार फिर दुनिया ने देखा है। स्वयं को "बेटियों के रक्षक" बताने वाले ये लोग राजस्थान और मध्य प्रदेश में बेटियों के ख़िलाफ़ मानवता को शर्मसार कर देने वाली हरक़तों को अंजाम देते हुए पकड़े गये हैं। राजस्थान के जोधपुर में जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय में 17 वर्षीय दलित लड़की के साथ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भाजपा के लम्पट छात्र संगठन अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के कार्यकर्ताओं ने सामूहिक बलात्कार किया। दूसरा मामला मध्यप्रदेश में सामने आया है। यहाँ दो बहनों के साथ सामूहिक बलात्कार किया गया जिनमें एक लड़की की उम्र 17 वर्ष और दूसरे की 19 वर्ष थी। इसमें पुलिस ने चार अपराधियों को गिरफ़्तार किया है जिनमें से एक स्थानीय भाजपा नेता का बेटा भी है।

इन दोनों घटनाओं में भाजपा और संघ की संलिप्तता कोई नई बात नहीं है। इससे पहले भी कई सारे बलात्कार के मामलों में "संस्कारी और राष्ट्रवादी" भाजपाइयों का नाम आ चुका है। कठुआ, उन्नाव से लेकर कई और ऐसे बलात्कार के मामले सामने आए जिनमें भाजपा विधायक से लेकर के संघ के लोगों तक को सीधे दोषी के रूप में पाया गया। इसके अलावा आसाराम बापू, राम रहीम और चिन्मयानन्द जैसे लोगों के साथ भी भाजपाइयों और संघियों का मेलजोल पूरी दुनिया के सामने है। ये सारे ऐसे नाम है जो कि स्वयं बलात्कार के मामले में आरोपी है। अब इन्हीं में से कइयों को भाजपा सरकार सारे नियम-क़ायदे और कानून ताक पर रख कर रिहा कर रही है या पैरोल पर बाहर कर रही है। गुजरात में बिलकीस बानो सामूहिक बलात्कार मामले में सज़ा काट रहे बलात्कारियों को न केवल भाजपा सरकार ने रिहा कराया बल्कि हिन्दुत्ववादी संगठनों द्वारा उनका जगह-जगह स्वागत भी किया गया।

केन्द्र और राज्यों की भाजपा सरकारें बलात्कारियों की सज़ा माफ़ करके रिहा कराने, उन्हें पेरोल पर जेल से बाहर करने का काम लगातार कर रही हैं। भयंकर स्त्री-विरोधी सोच रखने वाले संघ और भाजपा का बलात्कारियों के साथ गहरा रिश्ता है। बलात्कारियों के समर्थन में तिरंगा रैली निकालना, जय श्रीराम और भारत माता की जय के नारे लगाना तथा उनके जेल से बाहर आने पर फूल-मालाओं से इन घिनौने अपराधियों का स्वागत करना इनकी असल मानसिकता को दर्शाता है। इनकी मानसिकता को भाजपा और संघ के लोगों के बयानों से भी जाना जा सकता है। हरियाणा के भाजपा मुख्यमन्त्री मनोहर लाल खट्टर ने एक बार कहा था कि यदि औरतों को आज़ादी चाहिए तो नंगी घूमें! ऐसा व्यक्ति जिस पार्टी में हो उस पार्टी से स्त्रियों की सुरक्षा की क्या उम्मीद की जा सकती है? इसके साथ ही कर्नाटक विधानसभा में पोर्न (अश्लील वीडियो) देखते हुए भाजपा के मंत्रियों के पकड़े जाने की बात सबको याद होगी। ऐसी हरक़तें करते हुए भाजपाई कई बार पकड़े जा चुके हैं। आरएसएस के नेता इस तरह की बातें करते रहे हैं कि औरतों का काम पुरुष की सेवा करना तथा "अच्छे" हिन्दू पुत्र पैदा करना ही है। संघियों के गुरु गोलवलकर ने औरतों के बारे में ऐसे घटिया और दकियानूसी विचार अपनी पुस्तकों में लिखे हुए हैं। इन फ़ासिस्टों का प्यारा हिटलर भी औरतों के बारे में ऐसे ही विचार रखता था।

मणिपुर में कुकी महिलाओं के साथ भाजपा के मुख्यमन्त्री बिरेन सिंह की सरकार की खुली शह के साथ दंगाइयों की भीड़ ने जो बर्ताव किया है, उसे कोई संवेदनशील इन्सान न तो भूल सकता है और न ही इन दरिन्दों और उनके सरपरस्तों को कभी माफ़ कर सकता है। सभी जानते हैं कि सत्ता के लिए भाजपा और मोदी-शाह कुछ भी कर सकते हैं और चूँकि हर मोर्चे पर पिछले 9 सालों में मोदी सरकार नाकाम साबित हो चुकी है, उसका मज़दूर-विरोधी व जनता-विरोधी चरित्र लोगों के सामने आ रहा है, इसलिए अब वह साम्प्रदायिक दंगे फैलाने और बाँटने और राज करने की अपनी पुरानी नीति पर अमल कर रही है। हरियाणा के नूँह में हालिया दंगे और उससे पहले से मणिपुर में जारी नरसंहार इसी का परिणाम है।

'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' के नारे की असलियत आज दिन के उजाले की तरह साफ़ हो गई है। मोदी सरकार के अन्य नारों की तरह यह भी केवल एक जुमला ही साबित हुआ है। अपने आपको इस नारे का हिमायती बताने वाले इन भाजपाइयों ने स्त्री-विरोधी अपराधों के सारे रिकार्ड तोड़ डाले हैं। अभी हाल ही में महिला पहलवानों के द्वारा भाजपा के नेता बृजभूषण सिंह पर यौन उत्पीड़न का मामला हो या गुजरात 2002 के दंगों में बिलकीस बानो के बलात्कारियों को रिहा करने का मामला, यह बात साफ़ है कि भाजपा सरकार पूरी ताक़त के साथ बलात्कारियों को बचाने में लगी हुई है। ये लोग हिन्दू संस्कृति की बात करते हैं, संस्कारों की बात करते हैं, मगर इन घटनाओं ने यह साबित कर दिया है कि इनकी संस्कृति और संस्कार क्या है! यह बात आज हमें गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि भाजपा सरकार के सत्ता में रहने से बलात्कारियों का मनोबल बढ़ेगा और ऐसी घटनाएँ भी बढ़ेंगी। भाजपा के शासनकाल में बलात्कार की घटनाएँ लगातार बढ़ी हैं, जबकि बलात्कारियों को सज़ा मिलने की दर लगातार कम हुई है। हमें इन भाजपाइयों से न सिर्फ़ सावधान होना होगा बल्कि इनकी असलियत को और लोगों तक लेकर जाना होगा ताकि इनकी सच्चाई आम जनता तक पहुँचे।

# घरेलू कामगारों के विरुद्ध लगातर बढ़ते आपराधिक मामले

## दिल्ली में एक दस वर्षीय घरेलू कामगार लड़की के साथ मारपीट एवं प्रताड़ना की एक और शर्मनाक घटना

**(पेज 5 से आगे)**

14 साल की घरेलू कामगार को उसके नियोक्ता ने कई महीने तक मारपीट, यौन हिंसा, ब्लेड एवं अन्य गर्म धातु से दागने जैसी दरिन्दगी को अन्जाम दिया था। हर प्रकार के अपराध और कुकृत्यों के समान इस तरह के कुकृत्यों में भी भाजपाई और संघी सबसे आगे हैं। झारखण्ड में भाजपा महिला कार्यकारिणी की भूतपूर्व सदस्य महिला नेत्री सीमा पात्रा ने अपने यहाँ काम करने वाली घरेलू कामगार को बेहद निर्ममतापूर्वक पीटा था। सीमा पात्रा ने अपने यहाँ काम करने वाली महिला को फर्श पर पड़े पेशाब को चाटने के लिए मजबूर किया था। यह घटना जब तेज़ी से वायरल हुई और ख़बर बनी तो भाजपा ने इसे अपनी पार्टी से निकाल दिया।

नोएडा में अपने यहाँ पूरे समय काम करने वाली एक महिला के साथ मालकिन ने लिफ़्ट से खींचकर जमकर पिटाई की थी। इसका भी वीडियो वायरल हुआ था। कुछ साल पहले लखनऊ में एक रिटायर्ड डिप्टी एसपी ने अपने यहाँ काम करने वाली महिला को धमकी देकर कई महीनों तक उसके साथ बलात्कार किया था। कुछेक घटनाएँ बीच-बीच में सामने आ जाती हैं, लेकिन बड़े से छोटे शहरों तक में रोज़ बन्द दीवारों के भीतर क़ैद लाखों घरेलू कामगारों की चीख़ें आख़िर कब तक अनसुनी रहेंगी! घरों में काम करने वाली महिलाओं के साथ मारपीट, यौन हिंसा, चोरी का इल्ज़ाम लगाना, बिना किसी कारण के काम से कभी भी निकाल देना आदि घटनाएँ बहुत आम बात है। कुछ अपवाद को छोड़कर ज़्यादातर जगहों पर घरेलू कामगारों को सरकारों ने कामगार का दर्ज़ा ही नहीं दिया है। घरेलू कामगारों के लिए कोई न्यूनतम वेतन, छुट्टी, सामाजिक सुरक्षा, मातृत्व अवकाश, तयशुदा काम के घण्टे आदि निर्धारित नहीं हैं। स्थिति यह है कि अपने परिवार का पेट पालने के लिए घरेलू कामगार महिलाओं को कई घरों में काम करना पड़ता है।

जब कभी ऐसी घटनाएँ सामने आती हैं तो पुलिस की ओर से तात्कालिक तौर पर कुछ क़दम उठाकर सन्तोष कर लिया जाता है, लेकिन यह सिलसिला थमने के बजाय बढ़ता ही जा रहा है। वैसे तो जब तक मुनाफ़ा आधारित व्यवस्था क़ायम है, तब तक मेहनतकशों के बर्बरतम शोषण को रोकना सम्भव नहीं है। घरेलू कामगार भी समूची मज़दूर आबादी का ही अंग हैं। वे भी अपनी श्रमशक्ति धनिक व उच्च मध्यवर्ग के परिवारों को बेचते हैं। वे माल उत्पादन में नहीं लगे होते और उनका श्रम कोई मूल्य व बेशी मूल्य नहीं पैदा करता है। वह एक उपयोगी सेवा, एक उपयोग-मूल्य पैदा करता है। बेरोज़गारी की भयंकर स्थिति और बेहद कम मज़दूरी और साथ ही औरतों की ग़ुलामी के कारण एक विशाल आबादी आज घरेलू कामगारों के तौर पर काम करती है। इनमें से अच्छी-ख़ासी संख्या स्त्रियों की है और अक्सर इन स्त्रियों के पति या अन्य पारिवारिक सदस्य किसी अन्य पेशे में मज़दूर के तौर पर काम करते हैं, जैसे कि किसी कारख़ाने में, रिक्शा-ठेले खींचने वाले मज़दूर के तौर पर या निर्माण मज़दूर के तौर पर। घरेलू कामगारों का शोषण समूचे मज़दूर वर्ग के पूँजीपति वर्ग व धनिक व उच्च मध्यवर्ग के धनपशुओं का द्वारा शोषण का ही एक हिस्सा है।

चूँकि घरेलू कामगार अलग-अलग अकेले-अकेले काम करते हैं, इसलिए अक्सर उनके अन्दर गहरी वर्ग चेतना उन्नत नहीं हो पाती है। उनके बीच सर्वहारा वर्ग के हिरावल तत्वों को सतत् प्रचार करना चाहिए और उन्हें मौजूदा शोषणकारी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के बारे में बताना चाहिए। घरेलू कामगारों को इस व्यवस्था की असलियत को समझना होगा। घरेलू कामगारों की भी लड़ाई देश की अन्य मेहनतकश लोगों के संघर्ष के साथ ही जुड़ी हुई है। अपने धन और ताक़त के बल पर मेहनतकश का ख़ून चूसने वाला धन्नासेठों का पूरा वर्ग ही मज़दूर वर्ग का दुश्मन है। मज़दूरों द्वारा अपने वर्ग के आधार पर संगठित तथा एकजुट होकर ही मेहनत की लूट पर टिकी इनकी सत्ता को ध्वंस किया जा सकता है। आज तात्कालिक तौर पर घरेलू कामगारों की माँग बनती है- कामगारों के लिए अलग लेबर एक्सचेंज का गठन किया जाये, जिसमें कि उनका पंजीकरण हो और किसी भी व्यक्ति को घरेलू कामगार की ज़रूरत पड़ने पर इस एक्सचेंज द्वारा घरेलू कामगार मुहैया कराये जायें। घरेलू कामगारों पर न्यूनतम मज़दूरी समेत श्रम क़ानूनों में दिये गये सभी अधिकार लागू हों। उनके लिए एक अलग विशेष क़ानून बनाया जाये जिसमें कि उनके सम्मान, घरों में उनके साथ बराबरी के बर्ताव और उनकी रोज़गार-सुरक्षा को सुनिश्चित किया जाये। न सिर्फ़ घरेलू कामगारों की पहचान और पंजीकरण को सुनिश्चित किया जाये, बल्कि उनके नियोक्ताओं की भी जाँच के साथ ही उनका भी पंजीकरण किया जाये।

घरेलू कामगारों को इन माँगों को लेकर तथा आज के फ़ासिस्ट दौर में मज़दूर वर्ग पर होने वाले हमले के ख़िलाफ़ एकजुट होकर संघर्ष करना होगा।

# काकोरी ऐक्शन की विरासत से प्रेरणा लो! धार्मिक कट्टरता के ख़िलाफ़ सच्ची धर्मनिरपेक्षता के लिए आगे आओ!

**● सौम्य ध्रुव**

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास क्रान्तिकारी संघर्षों से भरा पड़ा है। **काकोरी ऐक्शन** ऐसी ही एक ऐतिहासिक घटना थी। 9 अगस्त 1925 को क्रान्तिकारियों ने काकोरी में एक ट्रेन में सरकारी ख़ज़ाना लूटा था। इसी घटना को 'काकोरी ऐक्शन' के नाम से जाना जाता है। क्रान्तिकारियों का मक़सद ट्रेन से सरकारी ख़ज़ाना लूटकर उन पैसों से हथियार खरीदना था ताकि अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ चल रहे संघर्ष को मज़बूती मिल सके। इस घटना को अंजाम देने में रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाकउल्ला खां, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रोशन सिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद सहित तमाम क्रान्तिकारी शामिल थे। ये सभी क्रान्तिकारी 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' (एचआरए) के सदस्य थे जिसकी स्थापना 1923 में शचीन्द्रनाथ सान्याल ने अन्य क्रान्तिकारियों के साथ मिलकर की थी।

इस लूट का विवरण देते हुए लखनऊ के पुलिस कप्तान मि. इंग्लिश ने 11 अगस्त 1925 को कहा, "क्रान्तिकारी ख़ाकी क़मीज़ और हाफ़ पैण्ट पहने हुए थे। उनकी संख्या 25 थी। ये सब पढ़े-लिखे लग रहे थे। पिस्तौल में जो कारतूस मिले थे, वे वैसे ही थे जैसे बंगाल की राजनीतिक क्रान्तिकारी घटनाओं में इस्तेमाल किये गये थे।"

इस घटना से बौखलाई अंग्रेज़ सरकार ने अपने पुलिस और ख़ुफ़िया विभागों की पूरी ताक़त क्रान्तिकारियों की धरपकड़ के लिए झोंक दी। देश के कई हिस्सों में बड़े पैमाने पर गिरफ़्तारियाँ हुईं। 40 से ज़्यादा लोगों को गिरफ़्तार किया गया। काकोरी ऐक्शन महज एक ट्रेन डकैती नहीं थी बल्कि ब्रिटिश सरकार को एक चेतावनी थी कि हम भले ही मुट्ठीभर क्रान्तिकारी हैं पर तुम्हारे साम्राज्य की चूलें हिला सकते हैं।

यह देश के क्रान्तिकारी स्वतन्त्रता आन्दोलन का विशेष दौर था जिसकी कुछ विशिष्टताएँ थीं। आगे चलकर भगतसिंह, सुखदेव, भगवतीचरण वोहरा जैसे क्रान्तिकारियों के चिन्तन की रोशनी में

**काकोरी केस के शहीद**
**रामप्रसाद 'बिस्मिल', अशफ़ाक़उल्ला खाँ, रोशन सिंह और राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी**

भारत का क्रान्तिकारी आन्दोलन भी इस नतीजे पर पहुँच गया था कि मज़दूर वर्ग की अगुवाई में जनता ही इतिहास बनाती है, क्रान्तिकारी पार्टी की अगुवाई में ही मज़दूर वर्ग जनता को नेतृत्व दे सकता है और महज़ कुछ बहादुर क्रान्तिकारी दस्ते हिंसक ऐक्शन के द्वारा अंग्रेज़ी राज के लिए समस्या तो पैदा कर सकते हैं, लेकिन उसे नेस्तनाबूद नहीं कर सकते। फिर भी क्रान्तिकारी आतंकवाद के इससे पहले के दौर के अपने अहम योगदान थे और इसमें क्रान्तिकारियों ने वीरता और बलिदान की शानदार मिसालें कायम कीं। काकोरी ऐक्शन का इसमें एक ख़ास स्थान है।

काकोरी की इस घटना ने ब्रिटिश सरकार में खौफ़ पैदा कर दिया। काकोरी ऐक्शन का ऐतिहासिक मुक़दमा लगभग 10 महीने तक लखनऊ की अदालत में चला। इस मुकदमे में रामप्रसाद 'बिस्मिल', अशफ़ाक़उल्ला खाँ, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी और रोशन सिंह को फाँसी की सज़ा सुनायी गयी। शचीन्द्रनाथ सान्याल को कालापानी और मन्मथनाथ गुप्त को 14 साल की सज़ा हुई। योगेशचन्द्र चटर्जी, मुकन्दीलाल, गोविन्द चरणकर, राजकुमार सिंह, रामकृष्ण खत्री को 10-10 साल की सज़ा हुई। विष्णुशरण दुब्लिश और सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य को 7 साल और भूपेन्द्रनाथ, रामदुलारे त्रिवेदी और प्रेमकिशन खन्ना को 5-5 साल की सज़ा हुई। चन्द्रशेखर आज़ाद सरकार की हर कोशिश के बाद भी उसके हाथ नहीं आये और संगठन को नये सिरे से खड़ा करने में लगे रहे।

वास्तव में काकोरी ऐक्शन उस समय तक चले आ रहे क्रान्तिकारी आन्दोलन के गुणात्मक रूप से नयी मंजिल में प्रवेश कर जाने का प्रतीक बन गया। काकोरी ऐक्शन में शामिल ये क्रान्तिकारी राजनीतिक चेतना और वैचारिकता के धरातल पर अपने पहले की पीढ़ी के क्रान्तिकारियों से आगे बढ़े हुए थे। उनके पास एक स्पष्ट स्वप्न था कि आने वाला समाज कैसा होगा। एचआरए के घोषणापत्र की शुरुआत इन शब्दों से होती है – "हर इन्सान को निःशुल्क न्याय चाहे वह ऊँच हो या नीच, अमीर हो या ग़रीब, हर इन्सान को वास्तविक समान अवसर, चाहे वह ऊँच हो या नीच, अमीर हो या ग़रीब।"

एच.आर.ए. के कुछ क्रान्तिकारी निजी जीवन में धार्मिक थे लेकिन ये क्रान्तिकारी धर्म को राजनीति से अलग रखने के कट्टर हिमायती थे। अपनी शहादत से पहले रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने लिखा था – *"अब देशवासियों से मेरा एक ही निवेदन है कि अगर उन्हें हमारे मरने का रत्तीभर भी दुख है, तो वे किसी भी तरह से हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करें, यही हमारी अन्तिम इच्छा है और वही हमारा स्मारक हो सकता है।"*

अशफ़ाक़उल्ला खाँ ने भी इसी तरह लिखा था – *"सात करोड़ मुसलमानों को शुद्ध करना नामुमकिन है और इसी तरह यह सोचना भी फ़िज़ूल है कि पच्चीस करोड़ हिन्दुओं से इस्लाम क़बूल करवाया जा सकता है। मगर हाँ, यह आसान है कि हम सब ग़ुलामी की बेड़ियाँ अपनी गर्दन में डाले रहें।"*

वास्तव में यह वही दौर था जब देश में अंग्रेज़ों की 'फूट डालो-राज करो' की नीति पूरे देश में जनता को जाति-धर्म की आग में झोंकने में लगी हुई थी। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे फ़ासीवादी संगठन काम कर रहे थे और 27 सितम्बर 1925 को इसकी औपचारिक स्थापना हो चुकी थी। बहुत से धार्मिक कट्टरपन्थी संगठन अस्तित्व में आ चुके थे। लेकिन इन क्रान्तिकारियों ने इन फ़ासीवादी-धार्मिक कट्टरपन्थियों की सच्चाई को पहचाना था और धर्मनिरपेक्षता को अपना आदर्श बनाया था।

काकोरी ऐक्शन के इन क्रान्तिकारियों की शहादत के बाद भगतसिंह और उनके साथियों ने इस विरासत को और आगे बढ़ाते हुए समाजवाद को अपने लक्ष्य के तौर पर अपनाया और भगतसिंह की पहल पर संगठन का नया नाम हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (एचएसआरए) रखा गया। आज स्थिति यह है कि देश की चुनावी राजनीति ने 'समाजवाद' शब्द को घिसा हुआ सिक्का बना दिया है। 'धर्मनिरपेक्षता' के आदर्श की स्थिति यह हो गयी है कि देश में धर्मनिरपेक्ष (सेक्युलर) शब्द को गाली की तरह प्रयोग किया जाता है। अंग्रेज़ों के नक्शेक़दम पर चलते हुए उनकी भूरी औलादों ने आज़ादी के 75 सालों में देश को जाति-धर्म के नाम पर लड़ाते-बाँटते हुए अपनी सत्ता चलायी है। फ़ासीवादी भाजपा और संघ परिवार ने इस मामले में अब तक के सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये हैं। हाल ही में हरियाणा में हुए साम्प्रदायिक दंगे इसकी एक बानगी है।

आज काकोरी ऐक्शन के शहीदों को याद करते हुए उनकी विरासत को लोगों तक पहुँचाना, जाति-धर्म के नाम पर जनता को लड़ाने-बाँटने वाले धार्मिक कट्टरपन्थियों की पोल खोलते हुए जनता को उनके असली सवालों पर एकजुट करना हर इन्साफ़पसन्द इन्सान का फ़र्ज़ बनता है। अब यह हमारे ऊपर है कि हम अपने फ़र्ज़ की आवाज़ को अनसुना करेंगे या इन क्रान्तिकारियों के रास्ते पर चलते हुए इनके सपनों के समाज के निर्माण के लिए आगे आयेंगे।

---

## स्त्री मुक्ति लीग, मुम्बई ने पूँजीवादी पितृसत्ता के खिलाफ आवाज़ बुलन्द करते हुए किया

# 'मुक्ति के स्वर' पुस्तकालय का उद्घाटन

कई वर्षों से स्त्री मुक्ति लीग, मुम्बई के मानखुर्द-गोवंडी इलाके में स्त्री मुक्ति के सवाल पर काम करती रही है। पूँजीवादी पितृसत्ता की बेड़ियों को तोड़कर, एक नये समाज के निर्माण के लिए जनता को साथ लेकर वह अपनी आवाज़ बुलन्द कर रही है। स्त्री मुक्ति लीग के कार्यकर्ताओं ने सीएए-एनआरसी के ख़िलाफ़ इलाक़े में अभियान चलाया था और शाहीन बाग की तर्ज़ पर गोवंडी को फ़ासीवादी मोदी सरकार के प्रतिरोध का केन्द्र बनाने का प्रयास भी किया था, जिसको महाराष्ट्र सरकार ने पुलिस बल के दम पर कुचलने का काम किया था। स्त्री मुक्ति लीग के कार्यकर्ताओं पर मुक़दमे भी दर्ज कराये गये थे। मगर इन सबसे कार्यकर्ताओं के हौसले बुलन्द ही हुए और पूरे गोवंडी-मानखुर्द के इलाके में स्त्रियों के उत्पीड़न की घटनाओं के ख़िलाफ़ उन्होंने लगातार अभियान चलाया व विरोध प्रदर्शन किये। फासीवादी मोदी सरकार के आने के बाद से स्त्री विरोधी घटनाओं में लगातार बढ़ोत्तरी देखने को मिल रही है। कठुआ, उन्नाव, बलरामपुर, हाथरस, मणिपुर व अन्य घटनाएँ समाज की वीभत्सतम तस्वीर पेश कर रही है। 'बेटी बचाओ, बेटी पढाओ' और 'बहुत हुआ महिलाओं पर वार, अबकी बार मोदी सरकार' का नारा देकर सत्ता में पहुँची मोदी सरकार कुलदीप सिंह सेंगर, चिन्मयानद, ब्रजभूषण जैसों को सरंक्षण देने का काम कर रही है।

स्त्री मुक्ति लीग पूँजीवादी पितृसत्तात्मक विचारों और मूल्य-मान्यताओं के खिलाफ़ लगातार सक्रिय रही है। इसके तहत लम्बे समय से स्त्री मुक्ति लीग विभिन्न प्रकार के काम ज़मीन पर कर रही है। इनमें से कुछ हैं : सावित्री-फ़ातिमा अध्ययन मण्डल चलाना, राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर महिला बैठकें आयोजित करना, झुग्गी बस्ती में फ़िल्म स्क्रीनिंग और चर्चा-सत्र का आयोजन, ऑनलाइन चर्चा-सत्र, विभिन्न कार्यशालाओं-व्याख्यानों का आयोजन करना, पोस्टर प्रदर्शनी और पर्चे बाँटकर अभियान चलाना, स्त्रियों पर होने वाले अन्याय और अत्याचारों के खिलाफ़ लगातार आवाज़ उठाना, आदि। इन्हीं कामों को आगे बढ़ाते हुए जनता से आर्थिक सहयोग जुटाकर पिछली 9 जुलाई को स्त्री मुक्ति लीग के पुस्तकालय व कार्यालय का उद्घाटन किया गया। इसका नाम रखा गया 'मुक्ति चे स्वर' (हिंदी में

'मुक्ति के स्वर') पुस्तकालय।

पुस्तकालय के उद्घाटन के अवसर पर एक सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस मौक़े पर स्त्री मुक्ति संघर्ष में शामिल क्लारा ज़ेटकिन, रोज़ा लक्ज़मबर्ग, सावित्रीबाई फुले, फ़ातिमा बी शेख, प्रीतिलता वाड्डेदार, दुर्गा भाभी के साथ-साथ साथी मीनाक्षी और साथी शालिनी जैसी क्रान्तिकारी स्त्रियों की तस्वीरों के साथ 'स्त्री मुक्ति का रास्ता, इंक़लाब का रास्ता', 'जीना है तो लड़ना होगा, मार्ग मुक्ति का गढ़ना होगा', 'पूँजीवादी पितृसत्ता मुर्दाबाद' जैसे नारे लगाते हुए रैली निकाली गयी और 'औरत' नाटक का मंचन किया गया। साथ ही गीत, रैप, कविता पाठ आदि की भी प्रस्तुति की गयी।

इस अवसर पर स्त्री मुक्ति लीग, महाराष्ट्र की संयोजक डा. पूजा ने कहा कि 'मुक्ति चे स्वर' में विभिन्न प्रकार का प्रगतिशील और क्रान्तिकारी साहित्य उपलब्ध हैं। इसके अलावा यहाँ नियमित रूप से स्त्री मुक्ति के सवाल पर बैठकें, अध्ययन आदि किये जायेंगे, लड़कियों और महिलाओं को 'सावित्री-फ़ातिमा अभ्यास समूह' के तहत नाटक, गीत, कविता आदि की शिक्षा दी जायेगी, कम्प्यूटर सिखाया जायेगा तथा फ़िल्म स्क्रीनिंग और व्याख्यान आयोजित किये जायेंगे। उन्होंने कहा कि मुम्बई जैसे महानगर में स्त्री मुक्ति लीग की ओर से, और लोगों के सहयोग से इस पुस्तकालय की शुरुआत की गयी है जो आज के इस स्त्री-विरोधी समय में एक अहम और ज़रूरी क़दम है। इस पुस्तकालय में स्त्रियों की मुक्ति से सम्बन्धित जिन प्रश्नों पर कार्यक्रम आयोजित किये जायेंगे वे आने वाले समय में पूँजीवादी पितृसत्ता के विरुद्ध स्त्रियों को जागृत और गोलबन्द करने का काम भी करेंगे।

**– बिगुल संवाददाता**

# मणिपुर में बर्बरता के लिए कौन है ज़िम्मेदार?

(पेज 1 से आगे)

हिंसा पर कोई भी बयान देना ज़रूरी नहीं समझा। उस एक घटना के लिए भी उसने केन्द्र सरकार की निष्क्रियता और अपराधियों के साथ मणिपुर सरकार की मिलीभगत की बात स्वीकार करने की बजाय उस घटना को अन्य राज्यों में महिलाओं के ख़िलाफ़ हो रही यौन हिंसा की घटनाओं से जोड़ते हुए सभी मुख्यमन्त्रियों से उचित क़दम उठाने को कहा। ढाई महीने की आपराधिक चुप्पी के बाद दिया गया यह शातिराना बयान भी मणिपुर के मामले की गम्भीरता को कम करके प्रस्तुत करने का ही एक शर्मनाक प्रयास है। अगर प्रधानमन्त्री को मणिपुर में हो रही दरिन्दगी पर वाक़ई कोई शर्मिन्दगी होती तो घड़ियाली आँसू बहाने की बजाय सबसे पहले वहाँ के मुख्यमन्त्री बीरेन सिंह को हटाया जाता।

वायरल वीडियो की घटना 4 मई को ही घटी थी और उसके बाद पीड़िताओं ने एफ़आईआर भी दर्ज कराया था। लेकिन मणिपुर पुलिस ने ढाई महीने तक कोई कार्रवाई नहीं की। कार्रवाई करना तो दूर, पीड़िताओं में से एक ने मीडिया को बताया कि जब उन दो कुकी महिलाओं के साथ दरिन्दगी हो रही थी तो मणिपुर पुलिस के सिपाही वहाँ मौजूद थे और उन्होंने ही महिलाओं को भीड़ के हवाले किया था। ज़ाहिरा तौर पर मणिपुर में पिछले ढाई-तीन महीनों के दौरान यौन हिंसा की यह अकेली ऐसी घटना नहीं थी (ऐसी कई घटनाओं के साक्ष्य कुकी समुदाय से आने वाले भाजपा नेताओं ने ही दिये हैं), परन्तु इस घटना से यह झलक ज़रूर मिलती है कि मणिपुर में हो क्या रहा है। अधिकांश मीडिया रिपोर्टों में बताया जा रहा है कि मैतेयी और कुकी समुदाय आपस में लड़ रहे हैं और दोनों एक-दूसरे के ख़िलाफ़ हिंसा कर रहे हैं। परन्तु इस तथाकथित साम्प्रदायिक और नृजातीय हिंसा को और क़रीब से देखने पर हम पाते हैं कि इसके शिकार ज़्यादातर लोग कुकी आदिवासी समुदाय के हैं। आगज़नी और धार्मिक स्थलों पर हमलों की भी ज़्यादातर वारदातें कुकी लोगों के ही ख़िलाफ़ हुई हैं, हालाँकि यह भी सच है कि जवाबी कार्रवाई में जान-माल का कुछ नुकसान मैतेयी पक्ष का भी हुआ है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मैतेयी समुदाय से आने वाला प्रदेश का मुख्यमंत्री एन. बीरेन सिंह स्वयं कुकी लोगों के ख़िलाफ़ नफ़रतभरी बयानबाज़ी रहा है और उसके इशारे पर पुलिस व प्रशासनिक महकमा भी खुलकर मैतेयी समुदाय का पक्ष ले रहा है। मारकाट, यौन हिंसा व आगज़नी की कार्रवाई करने के बाद भी भाजपा द्वारा पाले-पोसे जा रहे और संरक्षण प्राप्त मैतेयी राष्ट्रवादी व साम्प्रदायिक सैन्य गिरोहों के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की जा रही है और उनके हथियार व गोला-बारूद ज़ब्त नहीं किये जा रहे हैं। ऐसे में यह ताज्जुब की बात नहीं है कि कुकी समुदाय की ओर से जो एफ़आईआर दर्ज भी कराये गये उनपर कोई कार्रवाई नहीं की गयी। यह साफ़ है कि मणिपुर में पिछले तीन महीनों से जो कुछ हो रहा है वह दो समुदायों के बीच हो रही स्वत:स्फूर्त हिंसा नहीं है बल्कि राज्य सरकार द्वारा प्रयोजित कुकी आदिवासी समुदाय के बर्बर उत्पीड़न व नरसंहार की साज़िश का हिस्सा है जिसका नेतृत्व स्वयं मुख्यमन्त्री बीरेन सिंह कर रहा है।

ग़ौरतलब है कि मौजूदा हिंसा शुरू होने के पहले से ही बीरेन सिंह कुकी आदिवासियों के ख़िलाफ़ नफ़रत का ज़हर उगल रहा था। वह 'नार्को आतंकवाद' ख़त्म करने के नाम पर समूची कुकी आबादी को बदनाम करता है क्योंकि उनमें से कुछ लोग अफ़ीम की खेती करते हैं। लेकिन वह यह नहीं बताता कि मणिपुर में अफ़ीम का जो अवैध धन्धा चल रहा है उसमें केवल कुकी लोग ही नहीं बल्कि तमाम मैतेयी लोग भी शामिल हैं। परन्तु वह इस अफ़ीम के अवैध धन्धे के लिए समूची कुकी आबादी को ज़िम्मेदार ठहराता है और उन्हें सबक़ सिखाने की बात करता आया है।

मौजूदा हिंसा की शुरुआत के कुछ हफ़्तों पहले ही मणिपुर सरकार ने चूड़ाचाँदपुर ज़िले के कुछ गाँवों में कुकी आदिवासियों को उनकी ज़मीन से बेदख़ल करने का आदेश दिया था जिसका कुकी लोगों ने पुरज़ोर विरोध किया था। ग़ौरतलब है कि कुकी आदिवासी वर्षों से मणिपुर के पहाड़ों में स्थित गाँवों में रहते आये हैं, लेकिन मणिपुर की सरकार उन्हें उनके जंगल और ज़मीन से बेदख़ल करने पर उतारू है। इसके अलावा मुख्यमन्त्री बीरेन सिंह कुकी समुदाय को विदेशी बताकर भी उनके ख़िलाफ़ नफ़रत फैलाता आया है और समय-समय पर असम की तर्ज़ पर मणिपुर में भी एनआरसी कराने की बात करता आया है। मणिपुर में कुकी महिलाओं के साथ हुई वीभत्स घटना के वीडियो वायरल होने के बाद जहाँ एक ओर देशभर में बीरेन सिंह के इस्तीफ़े की माँग हो रही थी, वहीं दूसरी ओर मणिपुर सरकार मणिपुर में रहने वाले तथाकथित अवैध आप्रवासियों का बायोमेट्रिक डेटा इकट्ठा करने की क़वायद कर रही थी। ज़ाहिर है, नफ़रत फैलाने की ये सभी तिकड़में बीरेन सिंह ने फ़ासिस्ट संघ परिवार की नफ़रत की पाठशाला से सीखी हैं। ग़ौरतलब है कि संघ परिवार ने पिछले कुछ वर्षों में मणिपुर सहित उत्तर-पूर्व के कई हिस्सों में अपनी ज़हरीली फ़ासिस्ट विचारधारा का प्रचार-प्रसार करते हुए अपने पैर पसारे हैं और उत्तर-पूर्व के राष्ट्रों-उपराष्ट्रों-राष्ट्रीयताओं का जबरन भारतीय राज्य के साथ एकीकरण करने की मुहिम को उग्रतम रूप से आगे बढ़ा रहा है। मणिपुर में 2017 से भाजपा सरकार है और उसके बाद वहाँ ऐसे मैतेयी अन्धराष्ट्रवादी संगठनों की भरमार हो गयी है जो भारतीय राज्यसत्ता से लड़ने की बजाय नगा व कुकी पहाड़ी जनजातियों को अपना निशाना बना रहे हैं क्योंकि वे जनजातियाँ अधिकांशत: ईसाई धर्म को मानती आयी हैं। संघ परिवार की साम्प्रदायिक मुहिम का ही यह नतीजा है कि मणिपुर में जारी हिंसा में न सिर्फ़ कुकी लोगों के गाँवों व घरों पर हमला किया गया बल्कि उनके चर्चों पर भी बड़े पैमाने पर हमला किया जा रहा है। वायरल वीडियो में जो दरिन्दगी दिखी वह भी मैतेयी लोगों के बीच संघ परिवार की फ़ासिस्ट विचारधारा की बढ़ती पैठ का ही एक नमूना है। 2002 के गुजरात नरसंहार के दौरान हम देख चुके हैं कि संघ परिवार जिस समाज को अपनी फ़ासिस्ट प्रयोगशाला बनाता है उसमें अमानवीयता की सारी हदें पार हो जाती हैं।

सबसे विडम्बनापूर्ण स्थिति यह है कि जो मैतेयी जुझारू संगठन मणिपुर में भारतीय राज्यसत्ता द्वारा किये जा रहे राष्ट्रीय उत्पीड़न के ख़िलाफ़ संघर्षरत रहे हैं उनमें से भी कई कुकी आदिवासियों के ख़िलाफ़ की जा रही हिंसा में भी शामिल हैं और उसे जायज़ ठहरा रहे हैं। यह मणिपुरी क़ौम के राष्ट्रीय मुक्ति के आन्दोलन में प्रतिक्रियावाद और अन्धराष्ट्रवाद के असर को दिखा रहा है जोकि अच्छा संकेत नहीं है। सर्वहारा वर्ग उत्पीड़ित राष्ट्रों के राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रगतिशील व जनवादी पहलू का समर्थन करता है और इसलिए हम मैतेयी, कुकी व नगा सहित उत्तर-पूर्व के सभी उत्पीड़ित क़ौमों के आत्मनिर्णय के अधिकार का समर्थन करते हैं। परन्तु हम उत्पीड़ित राष्ट्रों के राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रतिक्रियावादी व अन्धराष्ट्रवादी पहलू की पुरज़ोर मुख़ालफ़त करते हैं।

साम्राज्यवाद के दौर में वैसे भी बुर्जुआ राष्ट्रों द्वारा उत्पीड़ित क़ौमों को आत्मनिर्णय के अधिकार दे पाने की सम्भावना-सम्पन्नता कम होती गयी है। यह हक़ अब लड़कर ही हासिल किया जा सकता है। पहले भी आम तौर पर कौमी आज़ादी जनता के जुझारू संघर्ष के परिणाम के तौर पर ही आयी है। स्विट्ज़रलैण्ड व नार्वे-स्वीडन जैसे कुछ उदाहरणों को छोड़ दिया जाये तो बुर्जुआ शासक वर्गों ने साम्राज्यवाद के दौर में कभी भी दमित राष्ट्रों को आत्मनिर्णय का अधिकार नहीं दिया है।

मणिपुर व उत्तर-पूर्व के मामले में औपनिवेशिक अतीत और आज़ादी के बाद भारतीय राज्यसत्ता के दमन के लम्बे इतिहास की वजह से राष्ट्रीय प्रश्न और भी जटिल हो गया है। मणिपुर में मैतेयी, कुकी-ज़ोमी और नगा तीनों समुदाय भारतीय राज्यसत्ता के दमन का शिकार हैं परन्तु इस दमन के नतीजे में पैदा हुई उनकी राष्ट्रीय आकांक्षाएँ एक-दूसरे से टकरा रही हैं और भारतीय शासक वर्ग इन टकराहटों को अपने हितों में बढ़ावा देता रहा है। आज इस काम को साम्प्रदायिक कट्टरपंथी तौर पर फ़ासीवादी मोदी सरकार कर रही है। मैतेयी लोग समूचे मणिपुर को अपने राष्ट्र में समाहित करने की आकांक्षा रखते हैं जबकि मणिपुर में रहने वाले नगा लोग सांस्कृतिक और भाषाई वजहों से नगालैण्ड में रहने वाले नगा लोगों के साथ क़रीबी महसूस करते हैं और ख़ुद को नगा राष्ट्र का हिस्सा मानते हैं। ग़ौरतलब है कि नगालिम (ग्रेटर नगालैण्ड) की जो माँग नगा राष्ट्रवादी कर रहे हैं उनमें मणिपुर के वे पहाड़ी ज़िले भी आते हैं जहाँ कुकी लोगों की अच्छी-ख़ासी आबादी रहती है। इसी वजह से 1990 के दशक में कुकी व नगा लोगों के बीच भीषण हिंसक संघर्ष भी हुआ था। इसी प्रकार मणिपुर राज्य के पहाड़ी ज़िलों में रहने वाले कुकी लोग सांस्कृतिक व भाषाई अन्तर की वजह से मैतेयी राष्ट्र से अलगाव महसूस करते हैं और भारतीय यूनियन के भीतर ही कुकीलैण्ड नामक अलग राज्य की माँग कर रहे हैं। आज़ादी के पहले और बाद के कुछ दशकों में बहुत से कुकी लोग इम्फ़ाल घाटी में भी आकर बसे थे और बहुत से मैतेयी लोग कुछ पहाड़ी ज़िलों में भी बसे थे जिसकी वजह से दोनों समुदायों के बीच घुलने-मिलने की ज़मीन पैदा हुई थी। परन्तु मौजूदा हिंसा ने दोनों समुदायों के बीच खाई को इतना चौड़ा कर दिया है कि उसे पाट पाना बेहद मुश्किल हो गया है।

नृजातीय पहचान के आधार पर जो संकीर्ण अस्मितावादी राजनीति उत्तर-पूर्व में जारी है उससे भविष्य में उत्तर-पूर्व में राष्ट्रीय प्रश्न और भी जटिल रूप लेने वाला है। चूँकि औपनिवेशिक काल में अंग्रेज़ों ने और आज़ादी के बाद भारतीय राज्यसत्ता ने उत्तर-पूर्व में राज्यों की सीमाएँ वहाँ की क़ौमों की आकांक्षाओं के अनुसार नहीं बल्कि 'फूट डालो और राज करो' की नीति के तहत मनमाने ढंग से की, इसलिए वहाँ की क़ौमों और नृजातीय समूहों के बीच टकराहटों के फैलने की सम्भावना बढ़ती गयी है।

इसका एक नमूना तब देखने में आया जब कुकी औरतों के साथ वीभत्स यौन हिंसा का वीडियो वायरल होने के बाद मिज़ोरम के मिज़ो जनजातीय संगठनों द्वारा मिज़ोरम में रहने वाले मैतेयी लोगों को मिज़ोरम छोड़कर मणिपुर वापस जाने की धमकी देने की ख़बरें आयीं। इसी प्रकार असम की बराक घाटी में रहने वाले मिज़ो जनजाति के लोगों को मैतेयी संगठनों ने मैतेयी इलाक़ों को छोड़कर जाने की चेतावनी दी है। उत्तर-पूर्व के राज्यों में राष्ट्रीय प्रश्न की जटिलता बढ़ने की एक वजह वहाँ हो रहा पूँजीवादी विकास है जो अपनी प्रकृति से ही विभिन्न क़िस्म की असमानताएँ पैदा कर रहा है। इसकी वजह से भी संकीर्ण नृजातीय अस्मितावादी राजनीति वहाँ फल-फूल रही है क्योंकि ये अस्मितावादी ताक़तें अपने-अपने समुदायों के लोगों की आर्थिक समस्याओं के लिए पूँजीवादी व्यवस्था को ज़िम्मेदार ठहराने की बजाय उनके आक्रोश को दूसरे नृजातीय समुदाय के लोगों के ख़िलाफ़ मोड़ देती हैं। मिसाल के लिए मैतेयी लोगों में बेरोज़गारी व आर्थिक तंगी के लिए पूँजीवाद ज़िम्मेदार है, परन्तु मैतेयी राष्ट्रवादी संगठन इसके लिए कुकी समुदाय को ज़िम्मेदार ठहराते हैं क्योंकि उन्हें अनुसूचित जनजाति का दर्जा हासिल है जिसकी वजह से उन्हें सरकारी नौकरियों में आरक्षण मिलता है।

इस जटिल परिस्थिति में भी सर्वहारा वर्ग का नज़रिया बिल्कुल साफ़ होना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारतीय राज्यसत्ता ने मणिपुर को कुटिलता से जबरन अपने साथ मिलाया और वह वहाँ के लोगों के न्यायसंगत संघर्षों को कुचलने के लिए सैन्य ताक़त का इस्तेमाल करती आयी है। इस वजह से मणिपुर में रहने वाले मैतेयी, नगा व कुकी क़ौमें निश्चित रूप से दमित हैं और उनके आत्मनिर्णय के जनवादी अधिकार का बिना शर्त समर्थन किया जाना चाहिए। परन्तु इसका यह अर्थ हरगिज़ नहीं है कि हम इन क़ौमों के बुर्जुआ वर्ग या निम्न-बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में चलने वाले राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रतिक्रियावादी और अन्धराष्ट्रवादी पहलुओं का भी समर्थन करेंगे या उसपर चुप्पी साधेंगे। हमें हर तरह के प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी विचारों की ही तरह इन दमित क़ौमों के राष्ट्रीय आन्दोलन में मौजूदा इन प्रतिक्रियावादी व संकीर्ण अस्मितावादी व कट्टरपन्थी विचारों के ख़िलाफ़ भी संघर्ष करना होगा और इन क़ौमों के आत्मनिर्णय की लड़ाई लड़ रही ताक़तों को भी ऐसे विचारों से किनारा करना होगा और दमित क़ौमों के बीच एकजुटता क़ायम करनी होगी। केवल तभी ये दमित क़ौमें अपने साझा दुश्मन यानी भारतीय राज्यसत्ता के ख़िलाफ़ प्रभावी ढंग से संघर्ष कर सकेंगी और भारत में समाजवाद के लिए संघर्ष कर रही सर्वहारा वर्ग की ताक़तों के साथ भी एकजुटता क़ायम कर सकेंगी। ऐसी एकजुटता भारत में सर्वहारा क्रान्ति व इन दमित क़ौमों की राष्ट्रीय मुक्ति दोनों के लिए ज़रूरी है। केवल तभी भारत में रहने वाली सभी क़ौमें बिना किसी ज़ोर-ज़बर्दस्ती व दमन के एक समाजवादी राज्यसत्ता के तहत साथ रहने की दिशा में आगे बढ़ सकती हैं।

# साम्प्रदायिकता, धार्मिक उन्माद और अन्धराष्ट्रवाद के फ़र्ज़ी शोर में क़तई नहीं बहना है! बेरोज़गारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, आवास, शिक्षा के मसले पर सभी धर्मों व समुदायों के मेहनतकश लोगों की जुझारू एकजुटता क़ायम करनी है!

(पेज 1 से आगे)

**को किस्मत का लेखा, हाथों की रेखा मान लेते हैं और ज़माने में रोज़ हमारे साथ होने वाले अन्याय को बर्दाश्त करना सीखते हैं और फिर धर्म की शरण में जाकर भजन-कीर्तन करके अपने दुख की आह-कराह को इस उम्मीद में निकाल देते हैं, कि "भगवान भला करेगा!"**

यहीं से आप धार्मिक भावनाओं की जकड़बन्दी में आते हैं और आपके ही दुश्मन यानी फ़ैक्ट्री मालिक, ठेकेदार, जॉबर, भूस्वामी, धनी व्यापारी और तमाम धनपशु ज़रूरत पड़ने पर इनका इस्तेमाल करते हुए आपको धार्मिक उन्माद में बहाने का काम करते हैं। जब भी आपके अन्दर महँगाई, बेरोज़गारी, बदहाली, अशिक्षा, बेघरी के विरुद्ध गुस्सा पनप रहा होता है, तो आपको धार्मिक उन्माद में बहाकर "धर्म रक्षा" का काम दे दिया जाता है। **दूसरे शब्दों में, अमीरों ने ग़रीब मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए धर्म के अलावा कुछ नहीं छोड़ा है।** इसी के नाम पर अमीरों की पार्टियाँ, आज के दौर में ख़ास तौर पर, भारतीय जनता पार्टी आप लोगों को धार्मिक उन्माद में बहाती हैं। जब दंगे होते हैं तो आपके घर जलते हैं, आपके लोग मरते हैं। जिनके साथ आप रोज़-रोज़ अपने दुख-दर्द साझा करते थे, उन्हीं का क़त्ल करते हैं या उनके हाथों क़त्ल हो जाते हैं। किसी भाजपा नेता के बच्चे बजरंग दल और विहिप में तलवार-त्रिशूल भाँजने नहीं जाते। वे सब तो विदेशों में पढ़ते हैं, अमित शाह के बेटे जय शाह के समान क्रिकेट बोर्ड के अध्यक्ष बनते हैं और करोड़ों-अरबों में खेलते हैं। लेकिन हमें दंगों में क़त्लो-गारत में झोंक दिया जाता है। अन्त में, चुनावों में मज़हब के नाम पर वोटों का बँटवारा होता है, और आप ही के सबसे ख़तरनाक दुश्मन इसका फ़ायदा उठाकर सत्ता में पहुँचते हैं, मुनाफ़ाखोर मालिकों, व्यापारियों, ठेकेदारों की सेवा में नीतियाँ बनाते हैं और आप जब भी अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाते हैं, तो आप ही पर लाठियाँ-गोलियाँ बरसाते हैं। प्रसिद्ध प्रगतिशील कवि गोरख पाण्डे ने सही लिखा था:

*इस बार दंगा बहुत बड़ा था*
*ख़ूब हुई थी*
*ख़ून की बारिश*
*अगले साल अच्छी होगी*
*फसल*
*मतदान की।"*

आज फिर से चुनावों का मौसम आ गया है। दंगों व साम्प्रदायिक तनाव के साथ इसी समय अचानक कोई आतंकी हमला हो जाता है, सीमा पर घुसपैठ हो जाती है। यह प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। ऐसे में, राहत इन्दौरी का यह शेर याद आ जाता है:

*सरहदों पर बहुत तनाव है क्या?*
*कुछ पता तो करो, चुनाव है क्या?*

भाजपा की मोदी सरकार पिछले 9 सालों में अपनी नाकामियों, रिकार्डतोड़ भ्रष्टाचार, अभूतपूर्व महँगाई और बेरोज़गारी से भयंकर रूप से अलोकप्रिय हो रही है। कर्नाटक चुनावों में करारी हार के बाद से मोदी-शाह समेत तमाम भाजपाइयों व संघियों के दिल की धुकधुकी बढ़ी हुई है। फ़ासीवादियों की एक ख़ासियत होती है कि वे किसी भी क़ीमत पर सत्ता नहीं गँवाना चाहते। कई राज्यों के राज्यपाल रहे एक पूँजीवादी राजनीतिज्ञ को भी यह बात समझ में आ रही है कि फ़ासीवादी बुर्जुआ राजनीति एक विशेष किस्म की बुर्जुआ राजनीति है। हम यहाँ सत्यपाल मलिक की बात कर रहे हैं, जो कई राज्यों के राज्यपाल रह चुके हैं और जिन्होंने भाजपा की राजनीति को बहुत ही क़रीब से देखा है। **मलिक ने हाल ही में एक साक्षात्कार में कहा कि भाजपा और ख़ास तौर पर मोदी-शाह सत्ता के लिए कुछ भी कर सकते हैं। 2019 के चुनावों के पहले पुलवामा हो गया था, जिसके बिना भाजपा नोटबन्दी के कारण पैदा हुई अलोकप्रियता के कारण हारने की कगार पर थी। लेकिन पुलवामा के कारण मोदी को जीत मिली। अब 2024 के चुनावों में भी मोदी-शाह को हार की आशंका सता रही है। मलिक का कहना है कि ऐसे में फिर से कोई आतंकी हमला हो जाये, राम मन्दिर पर हमला हो जाये, कहीं सीमा पर घुसपैठ हो जाये, या देश में जगह-जगह दंगे भड़क जायें तो कोई ताज्जुब की बात नहीं होगी। ऐसा हम नहीं, स्वयं एक पूँजीवादी व्यवस्था का मँजा हुआ राजनीतिज्ञ कह रहा है, तो निश्चित ही इसमें सच्चाई होगी।** वैसे भी हम देख ही सकते हैं कि भाजपा के सत्ता में रहने पर ही इस तरह के आतंकी हमले, दंगे, आदि हो जाया करते हैं और इन्हीं के बूते साम्प्रदायिकता और अन्धराष्ट्रवाद की लहर भड़काकर भाजपा सत्ता में पहुँचने की जुगत भिड़ाती है।

ऐसा होना शुरू हो गया है। एक तरफ़ नूँह में मोनू मानेसर, बंटी आदि जैसे अपराधी बजरंग दलियों और विहिप द्वारा योजनाबद्ध तरीके से दंगे भड़काये गये और उसके ज़रिये हरियाणा समेत पूरे देश में हिन्दू-मुसलमान दंगे फैलाने के प्रयास किये गये, तो वहीं 7 जुलाई को सीमा पर आतंकियों द्वारा घुसपैठ की ख़बर भी आ गयी। ज़ाहिर है, सत्यपाल मलिक के अन्देशे सही साबित हो रहे हैं। बड़े सन्तोष की बात है कि इस बार नूँह के मसले पर देश भर में और विशेष तौर पर हरियाणा और दिल्ली में साम्प्रदायिक तनाव फैलाने की संघी हाफ़पैण्टियों की साज़िश पहले की तरह क़ामयाब नहीं हो पा रही है और काफ़ी दम लगाने के बाद भी दंगाई उन्माद नहीं भड़क पा रहा है। बौखलाहट में आकर खट्टर सरकार नूँह की आम मुसलमान आबादी के घरों पर बुलडोज़र चला रही है, उन पर मुकदमे दर्ज़ कर रही है जबकि संघी दंगाइयों को दंगे फैलाने के लिए खुला छोड़ रखा गया है। हरियाणा और विशेष तौर पर मेवात की जनता ने दंगों को नहीं भड़कने दिया है और एकजुटता बनाये रखकर भाजपा की साज़िश को काफ़ी हद तक बेअसर किया है। फिर भी अभी हमें लगातार सावधान रहने की ज़रूरत है और लगातार जनता के बीच अभियानों के ज़रिये प्रचार करने की आवश्यकता है ताकि भविष्य में भी संघ परिवार की दंगाई साज़िशें क़ामयाब न होने पायें।

**भाजपा की फ़ासीवादी राजनीति की एक अन्य विशिष्टता यह है कि वह जनता को जहाँ जिस आधार पर बाँट सकती है, वहाँ बाँटती है।** मिसाल के तौर पर, मणिपुर में हिन्दू-मुसलमान दंगे नहीं करवाये जा सकते! तो वहाँ पर भाजपा ने मणिपुर के मैतेयी समुदाय (जिसका लगभग 80 प्रतिशत हिन्दू है व 20 प्रतिशत अन्य धर्मों से) की टुटपुँजिया व मुख्य रूप से हिन्दू आबादी के बीच से दंगाई गिरोह बनवाकर वहाँ की कुकी जनजाति के बीच हिंस्र दंगे और जनसंहार शुरू करवा दिया। इस जनसंहार में मणिपुर की भाजपा की बिरेन सिंह सरकार अपनी पुलिस व सशस्त्र बलों के साथ पूरा साथ दे रही है। मणिपुर में दो कुकी स्त्रियों के साथ मई में हुई भयंकर बर्बर घटना ने समूचे देश के इंसाफ़पसन्द लोगों के मन को गुस्से, नफ़रत और शर्म से भर दिया। ऐसा क्यों हुआ कि जो दो समुदाय अपने तमाम अन्तरविरोधों के बावजूद इस प्रकार की हिंसा से मुक्त रहे थे, अचानक एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे हो गये? इन दोनों ही समुदायों ने लम्बे समय से अपने क़ौमी दमन के ख़िलाफ़ भारतीय राज्यसत्ता से लड़ाई लड़ी है। उससे पहले इन दोनों समुदायों ने मिलकर ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के विरुद्ध भी संघर्ष किया था। लेकिन अब फ़ासीवादी भाजपा की फ़िरकापरस्त नीतियों ने इन दोनों को ही आपस में लड़ा दिया। इससे मणिपुर के राष्ट्रीय दमन विरोधी आन्दोलन को भी भयंकर नुकसान पहुँचा है, जिसका पूरा अन्दाज़ा भविष्य में ही लग पायेगा। ग़ौरतलब है कि फ़ासीवादी भाजपा के इस नग्न कुकर्म में मणिपुर के दलाल पूँजीपति वर्ग और उसकी दलाल पार्टियों ने भी साथ दिया है। उसके बिना यह सम्भव नहीं हो पाता।

फ़ासीवादी भाजपा इस प्रकार फ़िरकापरस्त झगड़ा भड़काने में कामयाब रही तो इसका एक बुनियादी आर्थिक कारण भी है जो पूँजीवादी व्यवस्था में हमेशा मौजूद रहता है। **यह है आर्थिक अनिश्चितता, रोज़गार का पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा पैदा किया गया कृत्रिम अभाव, संसाधनों का अमीरज़ादों की वजह से पैदा किया गया कृत्रिम अभाव और नतीजतन सीमित अवसरों के लिए विभिन्न समुदायों की बीच प्रतिस्पर्द्धा।** यह प्रतिस्पर्द्धा मैतेयी और कुकी समुदायों के बीच में भी थी। कुकी जनजाति को एस.टी. के तौर पर मान्यता प्राप्त है और इसलिए आरक्षण प्राप्त है। तमाम मसलों के साथ भाजपा ने इस मसले पर भी मैतेयी आबादी में कुकी जनता के प्रति पूर्वाग्रह और वैमनस्य पैदा किया। साथ ही, धार्मिक अन्तरों के आधार पर भी मैतेयी समुदायों में धार्मिक उन्माद भड़काया गया। एक 'बेगाने/अजनबी' या 'अन्य' के तौर पर भाजपा को यहाँ मुसलमान नहीं मिले, तो कुकी जनजाति को एक 'बेगाने/अजनबी', 'अन्य' व **नकली दुश्मन** के तौर पर पेश कर दिया गया और फिर राज्य की मशीनरी की मदद से लगातार उनके ख़िलाफ़ मैतेयी टुटपुँजिया आबादी के दंगाई गिरोहों के ज़रिये हिंसा, हत्या और बलात्कार करवाये गये और आज भी करवाये जा रहे हैं। **यही भाजपा का साम्प्रदायिक फ़ासीवादी 'टूलकिट' है : 'जहाँ जिस आधार पर बाँट सकते हो, बाँटो और राज करो!'**

इसी प्रकार भाजपा को जब उड़ीसा में कहीं पर पर्याप्त संख्या में 'नकली दुश्मन' का पुतला खड़ा करने के लिए मुसलमान नहीं मिलते हैं, तो वहाँ ईसाइयों को निशाना बनाने का प्रयोग किया जाता है। ग्रासरूट स्तर पर कई दशकों से उड़ीसा में संघ परिवार का यह प्रयास जारी है और धर्मान्तरण जैसे फ़र्ज़ी मुद्दे भड़काकर हिन्दू टुटपुँजिया आबादी में अन्धी प्रतिक्रिया की ज़मीन तैयार की जाती है। लेकिन वहीं केरल में भाजपा अच्छी-ख़ासी संख्या वाली मुसलमान आबादी के ख़िलाफ़ उन्माद भड़काने के लिए हिन्दू आबादी में तो साम्प्रदायिक प्रचार करती ही है, लेकिन उन्हीं ईसाई लोगों को भी साथ लेने का प्रयास करती है और चर्च के साथ गठजोड़ बनाती है, जिनको वह उड़ीसा में दुश्मन और "हिन्दू धर्म के लिए ख़तरा" बताती है!

**इस सबका मतलब क्या है? भाजपा की फ़ासीवादी राजनीति को समाज में पूँजीवाद के कारण पैदा असुरक्षा, अनिश्चितता और बदहाली से परेशान जनता और विशेषकर टुटपुँजिया जनता के बीच एक नकली दुश्मन की छवि बनानी होती है और फिर पूँजीवाद के समस्त अपराधों का ठीकरा उसके सिर फोड़ देना होता है। जहाँ जिस अल्पसंख्यक आबादी को निशाना बनाना आसान होता है, वहाँ भाजपा उसको निशाना बनाती है, चाहे वह मुसलमान हों, ईसाई हों, कुकी हों या प्रवासी।** तो समूची हिन्दीभाषी पट्टी व दक्षिण व पश्चिम के अधिकांश राज्यों में हिन्दू बहुल आबादी को बताया जाता है कि मुसलमान उसके रोज़गार, उसकी "बहू-बेटियों", उसके धर्म, उसकी ज़मीन के लिए ख़तरा है, तो वहीं उड़ीसा में यह "ख़तरे" की भूमिका ईसाइयों को दे दी जाती है जबकि उसी समय केरल में मुसलमानों के खिलाफ़ ईसाई धार्मिक कट्टरपंथियों से एकता बनायी जाती है। उसी प्रकार, मणिपुर में कुकी जनता को दुश्मन बनाकर पेश किया जाता है। **ये सारे ही प्रचार एकदम झूठ हैं। न तो मुसलमान हिन्दू का दुश्मन है और न ही हिन्दू मुसलमान का; न तो मैतेयी कुकी के दुश्मन हैं, न कुकी मैतेयी के। यह फ़ासीवादी भाजपा है जो सभी धर्मों, क़ौमों व समुदाय के आम मेहनतक़श अवाम की दुश्मन है।** भाजपा की फ़ासीवादी राजनीति का एक आम तत्व है कि जहाँ पर जो विभाजक रेखाएँ या दरारें दिखें, उनको लेकर धार्मिक या कौमी या जातिगत या भाषाई या क्षेत्रीय उन्माद भड़काओ और फिर जनता को बाँट दो। **एक-एक को बाँटो, ताकि सबपर हुकूमत कर सको।**

आज जबकि पिछले 9 वर्षों के मृतकाल की सच्चाई सारी जनता के सामने हर रोज़ उजागर हो रही है, तो भाजपा की मोदी-शाह सत्ता फिर से देश को दंगों की आग में झोंकने और देश में अन्धराष्ट्रवाद का फ़र्ज़ीवाड़ा फैलाकर जनता के वोट बटोरना चाहती है। **आप इतनी बात समझ लें : अगर आपने भाजपा और संघ परिवार की इस साज़िश को क़ामयाब होने दिया, तो अगले 5 साल आपका जीवन इस क़दर नर्क बनेगा कि आप सपने में भी नहीं सोच सकते। ज़रा सोचिए! 2014 में आपका जीवन-स्तर क्या था? आपकी खाने की थाली में क्या-क्या चीज़ें थीं और किस-किस मात्रा में थीं? आज आपकी खाने की थाली में क्या बचा है? आपकी जेब में कितने रुपये बचते थे महीने के अन्त में 2014 में? आज कितने बचते हैं? आप अपने बच्चों की किन-किन बुनियादी ज़रूरतों को एक हद तक पूरा कर पाते थे? आज किन ज़रूरतों को पूरा कर पाते हैं? 2014 में आप सप्ताह में औसतन कितने घण्टे काम करते थे? आज आप कितने घण्टे काम**

(पेज 10 पर जारी)

# साम्प्रदायिकता, धार्मिक उन्माद और अन्धराष्ट्रवाद के फ़र्ज़ी शोर में क़तई नहीं बहना है! बेरोज़गारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, आवास, शिक्षा के मसले पर सभी धर्मों व समुदायों के मेहनतकश लोगों की जुझारू एकजुटता क़ायम करनी है!

(पेज 9 से आगे)

**करते हैं? पिछले 9 वर्षों में जनता के जीवन को मोदी सरकार ने अपनी पूँजीपरस्त नीतियों से बरबाद कर डाला है। इसके बाद भी अगर आप धर्म के उन्माद में बहते हैं, तो अपने जीवन के बद से बदतर होते हालात के लिए आप ज़िम्मेदार होंगे, और कोई नहीं।**

क्या आपको लगता है कि रोज़गारी और महँगाई तो प्राकृतिक आपदाएँ हैं और इसमें मोदी जी क्या कर सकते हैं? अगर हाँ, तो आपको ग़लत लगता है! **बढ़ती महँगाई का कारण मोदी सरकार द्वारा अमीरों को टैक्स से मुक्त करना, उनका क़र्ज़ा माफ़ करना और इसके कारण होने वाले सरकारी घाटे की भरपाई के लिए आपके ऊपर टैक्सों का बोझ बढ़ाना है।** इन अप्रत्यक्ष टैक्सों के कारण ही महँगाई सारे रिकार्ड तोड़ रही है। इसके लिए सीधे-सीधे मोदी सरकार की नीतियाँ ज़िम्मेदार हैं। **बेरोज़गारी की दर में अभूतपूर्व वृद्धि का कारण है मोदी सरकार द्वारा भयंकर आर्थिक कुप्रबन्धन और ठेकाकरण व अनौपचारिकीकरण की वह आँधी जो मोदी सरकार के दौर में हमेशा से कहीं ज़्यादा तेज़ गति से बढ़ी है।** महँगाई व बेरोज़गारी जिससे आप त्रस्त हैं, वे ईश्वर का प्रकोप नहीं हैं, बल्कि मोदी सरकार की नीतियों का नतीजा है, जिनका मक़सद है अम्बानी, अडानी, टाटा, बिड़ला जैसे पूँजीपतियों की तिजोरियाँ भरने के लिए आपके ख़ून को सिक्कों में ढालना और आपकी हड्डी का चूरा बनाकर बाज़ार में बेचना। **आपका दुश्मन कोई मुसलमान, कोई हिन्दू, कोई ईसाई, कोई सिख, कोई कुकी, कोई प्रवासी नहीं है। सभी धर्मों और सभी समुदायों की समस्त मेहनतक़श जनता की सबसे ख़तरनाक दुश्मन है फ़ासीवादी मोदी सरकार और उसके पीछे खड़ा संघ परिवार।**

2024 के चुनावों और इसी वर्ष और अगले वर्ष होने वाले राज्य विधानसभाओं के चुनावों में हार का डर मोदी और शाह की रात की नींदों को हराम किये हुए है। अन्य पूँजीवादी पार्टियों के लिए फ़ासीवादी भाजपा ने जो अस्तित्व का संकट पैदा कर दिया है, उसके कारण उनमें से अधिकांश बड़ी पार्टियों ने *इण्डिया* नामक चुनावी मोर्चा बना लिया है। निश्चित तौर पर, यह मोर्चा भी देश की मेहनतकश जनता की नुमाइन्दगी नहीं करता और, फ़ासीवादी तानाशाही और आक्रामकता को छोड़ दें, तो उससे भी हम उन्हीं आर्थिक नीतियों की उम्मीद कर सकते हैं, जो मोदी सरकार लागू कर रही है, लेकिन शायद कुछ कल्याणवाद के साथ, कुछ कम आक्रामकता के साथ और कुछ कम तानाशाहाना अन्दाज़ में। लेकिन चुनावी तौर पर जो समीकरण पूँजीवादी राजनीति में *इण्डिया* गठबन्धन के बनने के साथ उभरे हैं, वे निश्चित तौर पर मोदी-शाह जोड़ी को परेशान कर रहे हैं। ग़ौरतलब है कि भाजपा के पक्ष में आज 25-30 प्रतिशत वही वोट हैं, जिनका व्यवस्थित रूप से साम्प्रदायीकरण किया गया है। उसके अलावा बड़ी आबादी आज भाजपा के पक्ष में वोट नहीं करने वाली, हालाँकि वह मूक रहती है। ऐसे में, भाजपा की जीत अधिकांश चुनावों में इस पर निर्भर करती है कि बाकी 70-75 फ़ीसदी वोटों को तरह-तरह की तिकड़म करके बाँट दिया जाय। *इण्डिया* गठबन्धन बनने से इसमें भाजपा के सामने दिक्कत पेश आ रही है।

मेहनतकश आबादी के पास आज अपनी कोई देशव्यापी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी नहीं है, हालाँकि इस दिशा में प्रयास जारी हैं। जब तक ऐसी कोई देशव्यापी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी नहीं खड़ी होती तब तक बड़ी आबादी बुर्जुआ चुनावों में भी इस या उस चुनावी पूँजीवादी पार्टी का पिछलग्गू बनने को बाध्य होती है। **निश्चित ही, पूँजीवादी चुनावों के रास्ते ही समाजवादी सत्ता स्थापित करने का सपना या तो मूर्ख देख सकते हैं या फिर सीपीआई, सीपीएम, माले जैसे बदमाश और घाघ संशोधनवादी। लेकिन चुनावों के क्षेत्र में क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को भी रणकौशलात्मक हस्तक्षेप करना अनिवार्य है क्योंकि इसके बिना व्यापक मज़दूर आबादी के अपने स्वतन्त्र सर्वहारा राजनीतिक पक्ष को नहीं खड़ा किया जा सकता है, जिसके बिना कोई समाजवादी क्रान्ति भी सम्भव नहीं होगी।** लेकिन जब तक ऐसा कोई पक्ष देश के पैमाने पर निर्मित नहीं हो जाता है, तब तक व्यापक मेहनतकश आबादी कम बुरे विकल्प की तलाश में रहती है, वह सत्ताधारी दल को चुनावों में दण्ड देने का प्रयास करती है, बिना इस उम्मीद के कि किसी अन्य पूँजीवादी दल की कोई नयी सरकार उसके रोज़गार और आजीविका के लिए कोई वास्तविक ठोस क़दम उठायेगी। यह त्रासद विकल्पहीनता की स्थिति है और इसके लिए हम व्यापक मेहनतकश आबादी को कोई दोष नहीं दे सकते हैं। हम यही कह सकते हैं कि जिस भी इलाके में किसी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के उम्मीदवार की मौजूदगी हो, वहाँ मेहनतकश जनता को उसे ही चुनना चाहिए क्योंकि वही उनके हितों की ईमानदारी के साथ नुमाइन्दगी कर सकता है। जहाँ ऐसा कोई उम्मीदवार न हो, वहाँ हम आपको कोई ठोस सुझाव नहीं देंगे, सिवाय इसके कि यह न भूलें कि आपका सबसे बड़ी दुश्मन फ़ासीवाद है।

मोदी-शाह की फ़ासीवादी सत्ता के और 5 साल आपके लिए नर्क साबित होंगे। यह तय है। ऐसे में, हमारे सामने तात्कालिक तौर पर क्या विकल्प है? **हमारे पास तात्कालिक तौर पर यह विकल्प है कि हम रोज़गार, महँगाई, शिक्षा, आवास और भ्रष्टाचार के सवाल पर जुझारू जनान्दोलन खड़ा करें ताकि कोई भी सरकार 2024 में बने, वह हमारी माँगों की सुनवाई करने को मजबूर हो, वह हमारी अनदेखी न कर सके।** आप मज़दूर उम्मीदवार की अनुपस्थिति में किसको वोट दें या न दें, यह बताना न तो हमारा काम है और न ही हम बता सकते हैं क्योंकि सभी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियाँ पूँजीपति वर्ग की ही नुमाइन्दगी करती हैं चाहे वह कांग्रेस हो, सपा हो, बसपा हो, द्रमुक हो, जद (यू) हो, राजद हो, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी हो या शिवसेना (यूबीटी) हो। इतना याद रखें कि *इण्डिया* गठबन्धन की भी सरकार बनी, तो भी आपको ज़्यादा से ज़्यादा कुछ फ़ौरी राहत और कुछ दिखावटी कल्याणवाद से ज़्यादा कुछ नहीं मिलेगा क्योंकि यह गठबन्धन पूँजीवादी दलों का ही है और यह पूँजीपति वर्ग की ही नुमाइन्दगी करता है। **ऐसी कोई सरकार भी हमारी माँगों की सुनवाई तभी करेगी जब हम एक मज़बूत जनान्दोलन खड़ा करें जो कि सभी को समान और निशुल्क शिक्षा और सभी को रोज़गार को बुनियादी अधिकार बनाने के लिए जुझारू तरीके से संघर्ष करे।** इस सच्चाई से अवगत कराना 'मज़दूर बिगुल' का काम है। केवल ऐसे जनान्दोलन के ज़रिये ही हम देशव्यापी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के निर्माण और गठन के दूरगामी कार्यभार को भी आगे बढ़ा सकते हैं और सर्वहारा क्रान्ति के ज़रिये समाजवाद और मज़दूर सत्ता की स्थापना की दिशा में एक अहम कदम बढ़ा सकते हैं। तभी देशव्यापी पैमाने पर हम सर्वहारा वर्ग व मेहनतकश आबादी के स्वतंत्र राजनीतिक पक्ष का निर्माण कर सकते हैं।

**अन्त में, एक बार फिर यह याद दिलाना अनिवार्य है कि व्यापक मेहनतकश जनता का सबसे बड़ा दुश्मन है फ़ासीवाद यानी हमारे देश में संघ परिवार, भाजपा और मोदी-शाह की सत्ता जो दंगों व अन्धराष्ट्रवाद के उन्माद के ज़रिये देश को ख़ून के दलदल में डुबोकर सत्ता हासिल करना चाहती है।** हम उन्हें क़ामयाब नहीं होने दे सकते। इसलिए हम आपके सामने दुश्मन की पहचान करने के कुछ आम पैमाने रखना चाहेंगे।

**जो भी आपके बीच धर्म के मसले पर राजनीति करे, मन्दिर-मस्जिद के मसले पर उकसाये, गोरक्षा और 'लव जिहाद' की फ़र्ज़ी बकवास करे और मुसलमान आबादी या किसी भी अन्य धर्म या समुदाय की आबादी को दुश्मन बताये, असल में, वह ख़ुद आपका दुश्मन है।** ***उसको बाहर का रास्ता दिखाएँ।***

**जो भी आपको चीन और पाकिस्तान के "ख़तरे" के नाम पर अन्धराष्ट्रवाद की आँधी में बहाने का प्रयास करे, उसे याद दिलाइये कि जब आप अपने हक़ों के लिए, अपनी मज़दूरी के लिए, सम्मान के लिए, अपने श्रम अधिकारों के लिए, रोज़गार के लिए लड़ते हैं तो कोई चीन या पाकिस्तान से आप पर लाठियाँ बरसाने या आपकी नौकरी छीनने नहीं आता है, बल्कि पूँजीवादी सरकार की पुलिस और सेना आती है। पाकिस्तान व चीन की मेहनतकश जनता से भला हमारा क्या बैर? हमारे सामने जो दुश्मन खड़ा है वह हमारे देश का धन्नासेठ वर्ग है जो हमारे शरीर को रोज़ निचोड़कर अपनी तिजोरियाँ भरता है और जिसकी नुमाइन्दगी करने वाली राज्यसत्ता का आतंक हम रोज़ झेलते हैं।** ***इसलिए जब आपको कोई इस प्रकार अन्धराष्ट्रवाद में बहाने का प्रयास करे, तो उसे भी बाहर का रास्ता दिखाएँ।***

**जब कोई आतंकी हमले, घुसपैठ का हवाला दे तो उसे याद दिलाएँ कि बार-बार यह तथ्य सामने आ चुका है कि ऐसे हमले या घुसपैठ आम तौर पर स्वयं हुक्मरानों की साज़िश का ही एक हिस्सा होते हैं, चाहे कारगिल युद्ध की बात हो, या फिर पुलवामा हमले की बात, जिसके बारे में आँखें खोल देने वाला खुलासा ख़ुद उस दौरान जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल रहे सत्यपाल मलिक कर चुके हैं। इसलिए "आतंकवाद" का शोर मचाकर आपको साम्प्रदायिकता और अन्धराष्ट्रवाद के उन्माद में बहाने वाले दंगाई घाघ व्यक्ति को याद दिलाइए कि इस समय जनता के लिए सबसे बड़ी आतंकी तो मौजूद सरकार और संघ परिवार की गुण्डा वाहिनियाँ हैं। राजकीय आतंक समाप्त हो जाये, तो आतंकवाद की समस्या भी कालान्तर में समाप्त हो जायेगी।** ***इसलिए कोई "आतंकवाद" के नाम पर आपके वोटों का ध्रुवीकरण करने आये, तो उसे भी बाहर का रास्ता दिखाएँ।***

**कोई मन्दिर-मस्जिद, ज्ञानवापी, मथुरा-काशी आदि का शोर मचाते आये, तो उसे भी याद दिलाएँ कि धर्म सबका निजी मसला है और हर मस्जिद में मन्दिर व शिवलिंग की तलाश कर धार्मिक भावनाएँ भड़काने से जनता की असली समस्याओं का हल नहीं निकलने वाला, यानी बेरोज़गारी और महँगाई की समस्या।** ***जो इन असल मुद्दों पर बोलने की बजाय मन्दिर-मस्जिद का पुराना सड़ा हुआ गाना गाये, उसे भी बाहर का रास्ता दिखाइए।***

मतलब यह कि हम केवल और केवल अपने जीवन के इन असल ठोस मुद्दों पर बात करेंगे, जिनका असर हमारे बच्चों के भविष्य पर पड़ना है। **हमें धर्म पर बात करनी ही नहीं है। धर्म लोगों का पूर्णत: व्यक्तिगत मसला है।** उत्तर, पश्चिमी व पूर्वी भारत के बहुत-से मन्दिर भी बौद्ध व जैन मठों को तोड़कर बनाये गये हैं। इसका स्पष्ट ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद है। तो क्या अब उन मन्दिरों को तोड़कर वापस बौद्ध और जैन मठ बनाये जायें? इससे किसको क्या हासिल होगा और जनता के असल मुद्दों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा? **जो हुक्मरान जनता की वर्तमान समस्याओं पर बात नहीं कर सकते, वे ही उन्हें किसी काल्पनिक अतीत के काल्पनिक धार्मिक अन्याय के नाम पर भड़काते हैं और मस्जिदों में मन्दिर ढूँढते मिलते हैं। ये न तो हमारे जीवित सवाल हैं और न ही मज़दूर वर्ग हज़ारों साल के अतीत में हुई घटनाओं का बदला मौजूदा समय में अपने वर्ग भाइयों व बहनों से लेने की बात करता है। ऐसी अतार्किक और मूर्खतापूर्ण बात को केवल कचरापेटी के हवाले किया जा सकता है।** लेकिन समूची पूँजीवादी राज्यसत्ता पर पिछले कई दशकों के दौरान हुई फ़ासीवादी चढ़ाई का नतीजा यह है कि संघ परिवार की इस साम्प्रदायिक राजनीति का साथ स्वयं अदालतें दे रही हैं।

**लेकिन हमें इसमें बिल्कुल नहीं बहना है। हमें अपने असली मसलों पर अड़े रहना है : मज़दूरी की माँग, ठेका प्रथा ख़त्म करने की माँग, रोज़गार को मूलभूत अधिकार बनाने की माँग, सबको समान व निशुल्क शिक्षा और चिकित्सा की माँग, पेंशन की माँग, आवास के अधिकार की माँग, अप्रत्यक्ष करों से मुक्ति की माँग, धर्म को राजनीति से पूर्ण से रूप से अलग करने वाले एक सच्चे सेक्युलर क़ानून की माँग।** अगर इन माँगों से हम किसी भी तरह से भटके, अगर इन माँगों पर हम देश में जगह-जगह अपने जुझारू आन्दोलन खड़ा करने के लक्ष्य से भटके, तो हमारे भविष्य में मौजूदा बरबादी से भी भयंकर बरबादी है। इस बात को याद रखना आज सबसे ज़्यादा ज़रूरी है।

# विपक्ष का नया गठबन्धन 'इण्डिया' और मज़दूर वर्ग व मेहनतकश आबादी का नज़रिया

● लता

भाजपा की मोदी सरकार के ख़िलाफ़ देश में बढ़ते असन्तोष, अलोकप्रियता और नाराज़गी को भाँपते हुए 2024 के लोकसभा चुनावों की तैयारी प्रमुख विपक्षी पूँजीवादी पार्टियों के बीच शुरू हो चुकी है। इस सिलसिले में ही 23 जून को नीतीश कुमार ने विपक्षी दलों की एक बैठक पटना में बुलायी थी। इस बैठक में कांग्रेस के अलावा तृणमूल कांग्रेस, राष्ट्रीय जनता दल, पीडीपी, नेशनल कॉन्फ्रेन्स, समाजवादी पार्टी, एनसीपी, शिवसेना (यूबीटी), आम आदमी पार्टी, सीपीआई (एम) सहित 18 बड़ी व छोटी क्षेत्रीय पार्टियों के नेताओं ने हिस्सा लिया। 18 जुलाई को बेंगलुरु में इन पार्टियों की एक और बैठक हुई जिसमें 26 पार्टियों ने हिस्सा लिया। 2024 के लोकसभा चुनावों में भागीदारी के लिए विपक्ष के इस गठबन्धन का नाम *इण्डिया* यानी भारतीय राष्ट्रीय विकासोन्मुख समावेशी गठबन्धन रखा गया।

देश में भाजपा के प्रति बदलते मिज़ाज को देखते हुए पहली बैठक के बाद 8 और पार्टियों ने गठबन्धन की बैठक में हिस्सा लिया। काँग्रेस भी इस बार ज़्यादा लचीला रुख लिये नज़र आ रही थी वहीं छोटी विपक्षी पार्टियों व क्षेत्रीय पार्टियों का रुख़ भी पहले से नरम दिखायी दे रहा था। इसकी वजह यह है कि भाजपा और आरएसएस की ख़तरनाक फ़ासीवादी राजनीति के समक्ष विपक्ष को अहसास हो रहा है कि उनका अस्तित्व ख़तरे में है। भाजपा बेहद व्यवस्थित तरीके से पूँजीवादी विपक्ष को भी बर्बाद करने में लगी हुई है। अभी कुछ दिनों पहले ही गुजरात कोर्ट ने राहुल गाँधी पर मानहानि का आरोप लगाया, उनकी लोकसभा की सदस्यता रद्द कर दी गयी तथा दो साल की सज़ा का आदेश दे दिया गया। इतना ही नहीं अगले साल के चुनावों में हिस्सा लेने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। हालाँकि सुप्रीम कोर्ट ने गुजरात कोर्ट के इस आदेश को रद्द कर दिया है लेकिन भाजपा और आरएसएस का फ़ासीवादी रवैया बुर्जुआ विपक्ष के लिए भी क्या स्थिति पैदा कर सकता है, इसकी बानगी सबके सामने थी। इसलिए अधिकांश बुर्जुआ विपक्षी दल एक मोर्चा बनाते हुए साथ आये हैं।

इस महागठबन्धन पर अन्य पार्टियों ने भी तुरन्त प्रतिक्रिया दी। वजह यह है कि अपने अस्तित्व पर फ़ासीवाद की लटकती तलवार उन्हें साफ़ नज़र आ रही है। जवाब में भाजपा ईडी और मनी लौंडरिंग ऐक्ट का पूरा इस्तेमाल करते हुए विपक्ष पर अपने हमले तेज़ कर रही है। हालाँकि अगर ईडी, आयकर विभाग और सीबीआई बुर्जुआ जनवादी पैमाने पर भी निष्पक्ष कार्रवाई करते तो समूची भाजपा इस समय जेल में पड़ी होती क्योंकि काले धन, भ्रष्टाचार, पूँजीपतियों से ग़ैर-क़ानूनी साँठ-गाँठ जिस कदर भाजपा की है, उतनी तो भारतीय पूँजीवादी राजनीति में किसी बुर्जुआ पार्टी की रही ही नहीं है। इस ख़तरे को भाँपते हुए विपक्षी दल भी लचीला रवैया अपनाकर एक हो रहे हैं। काँग्रेस *दिल्ली सर्विस बिल* का विरोध करने के लिए काफ़ी मोलभाव और खींचतान के बाद तैयार हुई, लेकिन फिर भी आम आदमी पार्टी तत्परता से इस महागठबन्धन *इण्डिया* का हिस्सा बनी रही। सतेन्द्र जैन, मनीष सिसोदिया पहले ही जेल में हैं, केजरीवाल पर भी ईडी के हमले हुए हैं। एनसीपी के नवाब मलिक और अनिल देशमुख, तृणमूल काँग्रेस के अभिषेक बनर्जी, काँग्रेस के डी.के. शिवकुमार पर ईडी के छापे पड़े हैं। पैसे के गबन के सिलसिले में राहुल गाँधी और सोनिया गाँधी से ईडी पूछताछ कर रही है। ईडी व अन्य एजेंसियों द्वारा आतंकित किये जाने के प्रयासों के विरुद्ध बुर्जुआ विपक्ष का ज़्यादातर हिस्सा एकजुट होता नज़र आ रहा है, कुछेक को छोड़कर जो कि पहले ही डर के मारे भाजपा की गोद में जाकर बैठ गये, जैसे कि अजित पवार।

देश में भाजपा की बढ़ती अलोकप्रियता, मोदी की फीकी पड़ती महामानव की छवि और भाजपा द्वारा विपक्ष पर बढ़ते हमलों ने विपक्षी पार्टियों के महागठबन्धन के बनने की पूर्वपीठिका तैयार की है। इस स्थिति के प्रति भाजपा भी सजग है और इसलिए विपक्ष पर अपने हमले को तेज़ करते हुए उसने भी अपने पुराने गठबन्धन एनडीए (नेशनल डेमोक्रैटिक अलायंस) की मीटिंग दिल्ली में ठीक 18 जुलाई को ही बुलायी जब बेंगलुरू में महागठबन्धन की बैठक हो रही थी।

इसके अलावा देश में व्यवस्थित तरीके से दंगों की आग भड़काने की शुरुआत पिछले कुछ महीनों से हो चुकी है। मार्च और अप्रैल में रामनवमी के दौरान पूरे देश में दंगे भड़काने का प्रयास किया गया जिसमें दिल्ली समेत मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार और महाराष्ट्र में दंगे भड़काये गये। मई से मणिपुर में जो आग लगी है उसमें आज तक वह झुलस रहा है। और अब हरियाणा के नूँह में बजरंग दल, विश्व हिन्दू परिषद, हिन्दू महासभा जैसे संगठन दंगे भड़काने कूद पड़े हैं। कई राज्यों के गवर्नर रहे सत्यपाल मलिक ने तो यहाँ तक दावा किया है कि भाजपा सत्ता की ख़ातिर कुछ भी करवा सकती है। अगर भाजपा को क़रीब से देखने वाला एक बुर्जुआ नेता यह कह रहा है, तो इस आशंका को नज़रन्दाज़ नहीं किया जा सकता। पिछले लगभग 1 वर्ष से देश की पूँजीवादी राजनीति और जनता के बीच माहौल में जिस दिशा में बदलाव हो रहे हैं, अगर वे उसी दिशा में जारी रहे, तो भाजपा की जीत पक्की नहीं रह जायेगी। भाजपा को इस समय यही भय सता रहा है और इसीलिए वे फिर से अपना पुराना तुरुप का पत्ता इस्तेमाल करने के फेर में है: यानी दंगे और साम्प्रदायिकता का खूनी खेल खेलना।

## विपक्ष का नया गठबन्धन 'इण्डिया' और मज़दूर-मेहनतकश वर्ग

विपक्ष ने 18 जुलाई को बेंगलुरू में अपने नये महागठबन्धन की घोषणा की है और गठबन्धन के उद्देश्यों में सबसे ऊपर महँगाई और बेरोज़गारी दूर करने की बात कही गयी है। राहुल गाँधी ने *इण्डिया* को मोदी-भाजपा के ख़िलाफ़ पूरे देश की महत्वाकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला गठबन्धन बताया है। इस गठबन्धन में राहुल गाँधी की 'भारत जोड़ो यात्रा' और कर्नाटक चुनावों में काँग्रेस के आक्रामक प्रचार ने भी भूमिका अदा की है। मोदी-शाह की जोड़ी के ख़िलाफ़ माहौल तैयार होने की ठोस सम्भावनाएँ नज़र आ रही हैं। विपक्ष इन्हीं सम्भावनाओं को हक़ीक़त में तब्दील करने की जुगत भिड़ा रहा है और महागठबन्धन इसी का एक हिस्सा है।

भाजपा और आरएसएस ने जिस तरह देश की आम मेहनतकश आबादी को तबाही और बर्बादी की कगार पर ला खड़ा किया है वैसे में 'हिन्दू राष्ट्र', 'लव जिहाद', 'गोरक्षा', 'धर्म-परिवर्तन' की जगह जो कोई भी रोज़गार, शिक्षा, स्वास्थ्य और सस्ते अनाज-सब्ज़ी-तेल की बात करेगा तो जनता उसे सुनेगी। लेकिन जनता यह भी जानती है कि सत्ता से बाहर होने पर सभी पूँजीवादी पार्टियाँ रोज़गार, शिक्षा और स्वास्थ्य की बात करती हैं, सत्ता में आने के बाद तो सेवा पूँजीपतियों की ही करती हैं। जनता इन पार्टियों से अपनी स्थिति में किसी मूलभूत बदलाव की उम्मीद नहीं रखती है इसलिए वह तात्कालिक राहत और वायदों के आधार पर वोट देती है। जनता को भी पता है कि *इण्डिया* में शामिल कई पार्टियाँ जैसे काँग्रेस, आम आदमी पार्टी, तृणमूल और जनता दल (यूनाइटेड) हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, दिल्ली, पंजाब, पश्चिम बंगाल और बिहार में सरकार में होते हुए नवउदारवादी नीतियों को ही लागू कर रही हैं, बेरोज़गारी-महँगाई की स्थिति वहाँ भी बाक़ी देश जैसी ही है और मज़दूर-मेहनतकश आबादी का शोषण-उत्पीड़न एक समान ही है। लेकिन कोई विकल्प न होने पर जनता सत्ताधारी पार्टी या गठबन्धन से अपना गुस्सा अन्य पार्टियों को वोट देकर ज़ाहिर करती है, हालाँकि व्यापक मेहनतकश जनता को आज किसी भी पूँजीवादी चुनावी दल से यह उम्मीद नहीं है कि वह पूँजीपति वर्ग की सेवा छोड़कर जनता के हितों में नीतियाँ बनायेगी। भाजपा अन्य सभी पूँजीवादी पार्टियों से इस मायने में अलग है कि वह एक फ़ासीवादी पूँजीवादी पार्टी है जो पूँजीपति वर्ग की नग्न और बर्बर तानाशाही को लागू करती है और जनता की सबसे बड़ी दुश्मन है। आज भाजपा की मोदी सरकार की नीतियों के कारण पिछले 10 साल में आम जनता के लिए आयी तबाही के कारण मौजूदा सरकार की स्वीकार्यता तेज़ी से घट रही है। यही डर भाजपा को सता रहा है और इसीलिए *इण्डिया* गठबन्धन के बनने से वह बेचैन है।

लेकिन अगर *इण्डिया* गठबन्धन 2024 के चुनावों में जीत भी जाये, तो व्यापक मेहनतकश जनता के जीवन में कोई बुनियादी बदलाव आयेगा इसकी कोई उम्मीद नहीं है। मौजूदा संकटग्रस्त पूँजीवादी व्यवस्था में कोई भी पूँजीवादी दल या गठबन्धन सरकार बनाने पर जनता को कोई तात्कालिक राहत तभी देगा जब व्यापक मेहनतकश जनता रोज़गार के अधिकार, शिक्षा के अधिकार, आवास के अधिकार, अप्रत्यक्ष करों के बोझ से मुक्ति के अधिकार के सवाल पर जुझारू जनान्दोलन खड़ा करे। ऐसे जनान्दोलनों को खड़ा करने के लिए क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के नेतृत्व और क्रान्तिकारी जनसंगठनों की सख़्त ज़रूरत है।

इस महागठबन्धन में संसदमार्गी यानी संशोधनवादी वाम पार्टियाँ जैसे कि सीपीआई, सीपीआई (एम), सीपीआई (एमएल) लिबरेशन भी शामिल हैं। इनका खुले तौर पर पूँजीवादी पार्टियों के साथ गठबन्धन बनाने का पुराना इतिहास रहा है। यह केवल फ़ासीवाद के ख़तरे की वजह से है, ऐसा नहीं है। सीपीआई और सीपीआई (एम) तो स्वयं भाजपा के साथ भी 1989 के विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार के गठबन्धन में शामिल थे। उसके पहले भी जनता पार्टी के दौर में सीपीआई (एम) ने जनसंघ के साथ सहकार किया था। संशोधनवाद वास्तव में मार्क्सवाद के चोगे में बुर्जुआ विचारधारा और राजनीति ही होता है। यह भी पूँजीपति वर्ग की सेवा करता है। बस यह थोड़ा संयम के साथ मज़दूर वर्ग को लूटने की नसीहत पूँजीपति वर्ग को देता रहता है, थोड़ा कल्याणवादी नीतियों को लागू करने की हिमायत करता रहता है, ताकि पूँजीवाद दीर्घजीवी हो सके। आज *इण्डिया* गठबन्धन में तमाम पूँजीवादी दलों के साथ इनका शामिल होना कोई ताज्जुब की बात नहीं है।

## भाजपा और नरेंद्र मोदी की बौखलाहट की पड़ताल

### *बढ़ती अलोकप्रियता*

देश में बेरोज़गारी और बढ़ती महँगाई का जो स्तर है वह पहले कभी नहीं था। जनता अपनी कमाई का 54-55 प्रतिशत सिर्फ़ भोजन पर खर्च कर रही है और शिक्षा, बीमारी और अन्य ज़िम्मेदारियों का बोझ या तो वह उठाने में अक्षम है या वह क़र्ज़ तले दबी जा रही है। 32 करोड़ बेरोज़गार का अर्थ है औसतन लगभग सभी घरों में एक या दो बेरोज़गार नौजवान। दूसरी तरफ़ पुलिस और छुटभैये नेताओं को मिली छूट ने मज़दूरों और मेहनतकशों की ज़िन्दगी को और कठिन बना दिया है। रेहड़ी-खोमचा लगाने पर पुलिस और छुटभैये नेताओं को रोज़ की कमाई से पैसे देना होता है। ठेकेदार छोटी-मोटी नौकरी के लिए भी खुले आम 20 से 25 हज़ार रुपये माँगते हैं। इतनी रकम देने के बाद भी ठेकेदार कहते हैं कि काम पसन्द नहीं आने पर निकाल देंगे। दुबारा कमाई के लिए मज़दूरों को निकाल भी देते हैं। भाजपा के शासन में नौकरी देने के नाम पर धाँधली पहले से कहीं अधिक बढ़ गयी है। सारे श्रम क़ानूनों को समाप्त करने के बाद इसकी ही उम्मीद की जा सकती है।

औरतों के ख़िलाफ़ बढ़ते अपराध और अपराधियों का संरक्षण भाजपा की नीति है। चाहे बिलकीस बानो के बलात्कारियों को आज़ाद करने की बात हो, गुजरात दंगे और बलात्कार में लिप्त बाबू बजरंगी, जगदीप पटेल की रिहाई हो या बृजभूषण शरण सिंह को संरक्षण का मामला हो, मोदी सरकार देश की जनता के सामने महिला सुरक्षा के मामले में नंगी हो चुकी है। आयुष, उज्ज्वला व अन्य योजनाओं की सच्चाई भी जनता के सामने है। जनता त्राहि-त्राहि कर रही है और देश का प्रधानमन्त्री या तो चुनाव प्रचारमन्त्री बना रहता है या विदेशों की यात्रा कर रहा होता है। इसके अलावा मोदी सरकार पानी की तरह पैसा विज्ञापन और प्रचार में बहा रही है। पिछले 5 सालों में 3,064 करोड़ रुपया मोदी सरकार ने विज्ञापनों पर लगाया है। देश में 5 हज़ार बच्चे भूख और कुपोषण से रोज़ाना मर रहे हैं और मोदी ने हज़ारों करोड़ की लागत से नये संसद भवन का निर्माण करवाया है। इन वजहों से मोदी सरकार जनता के बीच तेज़ी से अपना आधार खो रही है और इसकी बौखलाहट में नये सिरे से देश को छोटे-बड़े कई दंगों में झोंकने की साज़िश भाजपा और संघ परिवार खुले तौर पर शुरू कर चुके हैं, ताकि आने वाले चुनावों में धर्म के नाम पर वोटों का बँटवारा हो सके। लेकिन ये प्रयास अभी उतना रंग नहीं ला पा रहे हैं, जैसा कि नूँह में बजरंग दल द्वारा दंगे करवाने और हरियाणा में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करने के प्रयासों को मिली ठण्डी प्रतिक्रिया से साफ़ हो रहा है। ज़ाहिर है, संघ परिवार इसके जवाब में और आक्रामकता से दंगाई साज़िशों को अन्जाम देनेकी कोशिश करेगा जिससे जनता को सावधान रहना चाहिए।

### *क्षेत्रीय पार्टियों का असन्तोष*

एनडीए (राष्ट्रीय जनवादी गटबन्धन) की कई पार्टियों को ऐसा लग रहा है कि भाजपा ने 2019 के चुनावों के नतीजों के बाद जीत के नशे में अपने गठबन्धन की पार्टियों को नज़रन्दाज

(पेज 15 पर जारी)

# मज़दूर आन्दोलन में मौजूद किन प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग का लड़ना ज़रूरी है?

## क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

**(पाँचवी क़िस्त)**

*(इस श्रृंखला को पिछले दो अंकों में नहीं दे पाने के लिए हमें खेद है। आगे से इस मौजूँ और ज़रूरी श्रृंखला की निरन्तरता को बरक़रार रखा जायेगा – सम्पादक)*

**● शिवानी**

पिछली चार क़िस्तों में हमने अर्थवाद की प्रवृत्ति से जुड़े कई महत्वपूर्ण पहलुओं को समेटा। मुख्य तौर पर हमने देखा कि मज़दूर आन्दोलन के भीतर मौजूद अर्थवाद मज़दूर वर्ग को केवल ऊँचे वेतन-भत्तों की लड़ाई की चौहद्दी में क़ैद करके रखता है और राजनीतिक तौर पर मज़दूर वर्ग को अपंग बना देने का काम करता है यानी मज़दूर वर्ग को राजनीतिक प्रश्न उठाने में अक्षम बना देता है। सचेतनता और विचारधारा के तत्व की जगह स्वतःस्फूर्तता की अन्धभक्ति अर्थवाद का सबसे बुनियादी लक्षण है जिसके बारे में हमने पिछले अंकों में विस्तार से बात की है।

किसी भी मज़दूर साथी को अब तक हुई चर्चा पढ़कर लग सकता है कि तो क्या फिर वेतन-भत्तों की लड़ाई लड़नी ही नहीं चाहिए? बढ़ती मँहगाई और सामाजिक-आर्थिक अनिश्चितता के साथ वेतनमान भी बढ़ना ही चाहिए वरना गुज़ारा कैसे होगा? यह बात बिलकुल सही है कि मज़दूरी बढ़नी ही चाहिए! पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े के अनुपात में मज़दूरी का हिस्सा तो वैसे ही नगण्य है। इसीलिए तो ट्रेड यूनियन के तहत संघर्ष संगठित करना मज़दूरों के लिए साँस लेने जैसा है, यह संघर्ष तो मज़दूर अपनी स्वतःस्फूर्त चेतना से भी संगठित कर ही लेते हैं जैसा कि हम आगे की चर्चा में देखेंगे भी। लेकिन मज़दूरों के सभी संघर्षों का क्षितिज यदि केवल बढ़े हुए वेतन/ मज़दूरी या फिर बेहतर कार्यस्थितियों के लिए संघर्ष ही होगा तो मज़दूर वर्ग कभी इससे आगे जाने के बारे में सोचेगा ही नहीं। उसे इस व्यवस्था के भीतर ही जैसे-तैसे काम चला लेने का विचार अधिक नैसर्गिक प्रतीत होगा जोकि दरअसल शासक वर्गों के विचार का ही प्रभाव होता है। वह राजनीति से ख़ुद को दूर रखेगा और यह कार्यभार कुछ उदार "प्रबुद्ध" लोगों के ऊपर छोड़ देगा जैसा कि रूसी अर्थवादियों का मत था। आर्थिक माँगों के लिए ये संघर्ष अक्सर कारख़ाना या मिल मालिक के ख़िलाफ़ होते हैं। और अगर ये संघर्ष शुद्ध अर्थवादी तरीक़े से लड़े जायें तो निशाने पर हमेशा उस अकेले कारख़ाने का मालिक ही रहेगा। और इस तरह समूची पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीवादी राज्यसत्ता प्रश्नों के दायरे से बाहर चली जाती है। इसलिए प्रश्न आर्थिक संघर्षों को लड़ने या नहीं लड़ने का है ही नहीं। बल्कि प्रश्न यह है कि ये संघर्ष किस तरीक़े से लड़े जाते हैं।

लेनिन ने इसे ख़ुद ही स्पष्ट कर दिया था जब उन्होंने सामाजिक-जनवादी/ कम्युनिस्ट राजनीति के बरक्स अर्थवाद और ट्रेड यूनियनवाद की आलोचना प्रस्तुत की थी। **कम्युनिस्ट केवल श्रम-शक्ति की बिक्री के वास्ते बेहतर दाम हासिल करने के लिए ही नहीं, बल्कि उस सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को मिटाने के लिए मज़दूर वर्ग के संघर्ष का नेतृत्व करते हैं जो सम्पत्तिहीन लोगों को धनिकों के हाथ बिकने को मजबूर करती है।** कम्युनिस्ट मज़दूर वर्ग का प्रतिनिधित्व केवल मालिकों के किसी एक धड़े विशेष के सम्बन्ध के मामले में ही नहीं, बल्कि आधुनिक समाज के सभी वर्गों के साथ और एक संगठित राजनीतिक शक्ति के रूप में राज्यसत्ता के साथ उसके सम्बन्ध के मामले में भी करते हैं। इस पर हम थोड़ा आगे आयेंगे।

हमने पिछले अंकों में आयी अब तक की चर्चा में यह भी जाना कि मज़दूर वर्ग की पूरी राजनीति को ट्रेड यूनियन की राजनीति तक सीमित कर देना वास्तव में मज़दूर वर्ग की राजनीति के एक पूँजीवादी संस्करण की बात करना होगा और यह मज़दूर आन्दोलन में बुर्जुआ नीति को लागू करने के समान है और अर्थवाद यही करता है। भारत में तो मज़दूर आन्दोलन के भीतर मौजूद तमाम ट्रेड यूनियनें, जिनका सम्बन्ध किसी न किसी चुनावी राजनीतिक दल से है, इसका सबसे भोंड़ा संस्करण पेश करती हैं। **इनमें भी जो किसी "कम्युनिस्ट" (केवल नामधारी) पार्टी से ताल्लुक रखती हैं, वे ट्रेड यूनियनें तो मज़दूर वर्ग से सबसे घृणित क़िस्म की ग़द्दारी करती हैं जिनमें सीटू, एटक, ऐक्टू जैसी यूनियनें प्रमुख हैं।** हमने अर्थवाद पर अपनी शुरुआती चर्चा में इंगित किया था कि ये यूनियनें अर्थवाद का दक्षिणपन्थी संस्करण प्रस्तुत करती हैं। यही नहीं, मौजूदा दौर में मोदी राज के रूप में फ़ासीवादी उभार यानी कि बड़े इज़ारेदार पूँजीपति वर्ग की नंगी तानाशाही के इस वर्तमान दौर के लिए भी इन संसदमार्गी वामपंथी पार्टियों का संसदवाद, अर्थवाद, सुधारवाद और अवसरवाद काफ़ी हद तक ज़िम्मेदार है। और ऐसा इतिहास में पहली बार नहीं हो रहा है।

जर्मनी में फ़ासीवाद के उभार के पीछे एक महत्वपूर्ण कारण जर्मनी के सामाजिक-जनवादियों (ग़ौर करें, इस दौर में सामाजिक-जनवादी होना कम्युनिस्ट होना नहीं था, बल्कि क्रान्तिकारी सर्वहारा राजनीति और विचारधारा की जगह सुधारवादी हो जाना था) का **सुधारवाद** और **अर्थवाद** था। सामाजिक-जनवादियों के सुधारवादी तौर-तरीक़ों की गिरफ़्त में जर्मन मज़दूर आन्दोलन बस मिली हुई रियायतों और सहूलियतों से चिपके रहना चाहता था, उससे आगे नहीं जाना चाहता था। दूसरे शब्दों में, सामाजिक-जनवाद/सुधारवाद ने मज़दूर आन्दोलन को पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर मिले सुधारों से आगे बढ़ने के बजाय उन्हें बचाये रखने तक सीमित रखना का काम किया। लेकिन पूँजीपति वर्ग के लिए संकट के दौरों में इन सुधारों और रियायतों को क़ायम रखना न तो सम्भव ही रह जाता है और न ही उसकी ऐसी कोई मजबूरी ही होती है। जर्मनी में भी ठीक यही हुआ था। सामाजिक-जनवाद ने दरअसल मज़दूर आन्दोलन को सुधारवाद की गलियों में ही घुमाते रहने का काम किया और मज़दूर वर्ग को राजनीतिक प्रश्न उठाने के मामले में असमर्थ बना दिया। उसने पूँजीवाद का कोई विकल्प मज़दूर वर्ग के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया और उसका कुल मक़सद पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर रहते हुए वेतन-भत्ते बढ़वाते रहना और चन्द-एक रियायतें-सहूलियतें हासिल करना मात्र रह गया था। यानी कुल नये उत्पादित मूल्य में मुनाफ़े के अनुपात में मज़दूरी को बढ़ाना और जो मिल गया उसी से चिपके रहना। पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीपति वर्ग ऐसा कर पाने में हमेशा सक्षम नहीं होते हैं, विशेष तौर पर आर्थिक संकट के दौर में। सामाजिक जनवादी इस बात को समझ पाने में कच्चे साबित हुए या फिर वे अपने सुधारवाद के चलते इसे समझना ही नहीं चाहते थे। नतीजतन आर्थिक संकट के बढ़ने के साथ मज़दूर वर्ग समेत आम मेहनतकश आबादी के सामने बेरोज़गारी, असुरक्षा और अनिश्चितता का संकट बढ़ता गया। इसके नतीजे के तौर पर निम्न-मध्यम वर्गीय आबादी के कुछ हिस्सों के बीच एक प्रतिक्रिया पैदा हुई जिसका इस्तेमाल जर्मनी में नात्सियों ने किया और भारत में फ़ासीवादी भाजपा और संघ परिवार द्वारा किया जा रहा है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जर्मनी के जिस दौर की बात हम यहाँ कर रहे हैं उस दौर में वहाँ एक मज़बूत और जुझारू आन्दोलन मौजूद था और नात्सियों ने इस आन्दोलन का बेरहमी के साथ ध्वंस किया। भारत में आज ऐसी कोई स्थिति नहीं है। हालाँकि जर्मनी में यह मज़बूत मज़दूर आन्दोलन सामाजिक-जनवाद के नेतृत्व में पूँजीवादी सुधारवाद की अन्धी गलियों में ही भटकता रह गया। लेकिन यह दिखलाता है कि मज़दूर आन्दोलन के भीतर अर्थवादी और सुधारवादी राजनीति और कार्यदिशा के कितने भयंकर परिणाम हो सकते हैं।

इस संक्षिप्त चर्चा के बाद हम मूल चर्चा पर वापस लौटते हैं। पिछले अंक में हमने चर्चा की थी कि ट्रेड यूनियन जैसे जन संगठन और कम्युनिस्ट पार्टी संगठन के बीच फ़र्क करना बेहद ज़रूरी है। लेनिन ने बताया था कि सर्वहारा वर्ग का हिरावल उसकी राजनीतिक पार्टी होती है। यह सर्वहारा वर्ग के राजनीतिक और विचारधारात्मक रूप से सबसे उन्नत तत्वों का लड़ाकू दस्ता होती है। वहीं ट्रेड यूनियन मज़दूर वर्ग के आर्थिक अधिकारों की हिफ़ाज़त करने वाले जन संगठन होते हैं। लेकिन अर्थवादी इस फ़र्क को या तो गड्डमड्ड कर देते हैं या फिर पार्टी संगठन को ट्रेड यूनियन के स्तर पर लाकर खुली सदस्यता वाला एक आम जन संगठन बना देते हैं।

मज़दूर वर्ग के उन्नत तत्वों की राजनीतिक समझदारी की अनदेखी करते हुए अर्थवादी ख़ुद को सबसे पिछड़े हुए मज़दूरों के अनुसार ढाल लेते हैं। वे दरअसल जिन माँगों के लिए लड़ते है वह लेनिन के शब्दों में "रूबल में एक कोपेक की बढ़ोत्तरी के पुराने राग का ही एक नया संस्करण है।" पार्टी संगठन की गतिविधि का दायरा क्या होता है यह लेनिन **'क्या करें?'** में विस्तारपूर्वक बताते हैं। सर्वहारा वर्ग की हिरावल पार्टी मज़दूरों और जनसमुदायों के पीछे उनकी पूँछ पकड़कर नहीं चलती है। अगर पार्टी ऐसा कर रही है तो उसे "सर्वहारा वर्ग के संगठन का उच्चतम स्वरूप" कहा ही नहीं जा सकता है।

लेनिन **'क्या करें?'** में अर्थवादियों के पुच्छलवाद पर तीक्ष्ण राजनीतिक व्यंग्य और कटाक्ष के ज़रिये शानदार हमला करते हैं। लेनिन बताते हैं कि क्रान्तिकारी मज़दूर अर्थवाद और ट्रेड यूनियनवाद की सीमाओं को हर बीतते दिन के साथ समझ रहा है और

"ऐसा मज़दूर 'राबोचाया मिस्ल' और 'राबोचाया द्येलो' के अपने सलाहकारों से कहेगा: सज्जनो, आप एक ऐसे काम में हद से ज़्यादा जोश-ख़रोश के साथ दखल देकर, जिसे हम ख़ुद बखूबी कर सकते हैं, अपना अमूल्य समय बेकार में नष्ट कर रहे हैं, और जो काम आपको सचमुच करना चाहिए, उसे आप नहीं कर रहे हैं। आपने यह कहकर कोई होशियारी की बात नहीं कही है कि सामाजिक-जनवादियों/ कम्युनिस्टों का कार्यभार आर्थिक संघर्ष को ही राजनीतिक रूप देना है (इसकी चर्चा हमने तीसरी क़िस्त में की थी, यह प्रस्थापना मार्तिनोव द्वारा दी जा रही थी जिसकी आलोचना लेनिन ने **'क्या करें?'** में प्रस्तुत की थी- *लेखिका*); यह तो केवल पहला क़दम है, यह सामाजिक-जनवादियों/कम्युनिस्टों का मुख्य कार्यभार नहीं है क्योंकि दुनियाभर में और रूस में भी आर्थिक संघर्ष को राजनीतिक रूप देने की *शुरुआत तो अकसर ख़ुद पुलिस ही कर देती है*, और उससे मज़दूर ख़ुद इस बात को समझना सीखते हैं कि सरकार किसके पक्ष में है। "मालिकों तथा सरकार के ख़िलाफ़ मज़दूरों के जिस आर्थिक संघर्ष" का आप लोग इतना शोर मचा रहे हैं, उससे ऐसा लगता है, मानो आपने किसी नये अमरीका को खोज निकाला हो, वैसा संघर्ष इस समय रूस के अनेक दूरस्थ स्थानों में स्वयं मज़दूरों द्वारा चलाया जा रहा है, **जिन्होंने हड़तालों का नाम तो सुना है, पर समाजवाद के बारे में कुछ नहीं सुना है।** ऐसी ठोस माँगें उठाकर, जिनसे कोई ठोस नतीजे निकलने की उम्मीद हो, आप हम मज़दूरों में जो "क्रियाशीलता" उत्प्रेरित करना चाहते हैं, उसका परिचय तो हम आज भी दे रहे हैं, अपने रोज़मर्रा के सीमित ट्रेड यूनियन कार्य में हम स्वयं ये ठोस माँगें पेश कर रहे हैं, बहुधा बुद्धिजीवी की किसी भी सहायता के बिना। लेकिन *यही* क्रियाशीलता हमारे लिए काफ़ी नहीं है। हम बच्चे नहीं हैं जो केवल "आर्थिक" राजनीति की पतली लपसी से ही सन्तुष्ट हो जायें; **हम तो हर एक चीज़ जानना चाहते हैं, जो दूसरे लोग जानते हैं, हम राजनीतिक जीवन के तमाम पहलुओं को विस्तार से समझना और प्रत्येक राजनीतिक घटना में सक्रिय भाग लेना चाहते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि बुद्धिजीवी लोग हमें वे बातें कम बतायें, जो हम पहले से जानते हैं, और वे बातें ज़्यादा बतायें, जो हम अभी नहीं जानते और जो हम अपने कारख़ाने के और "आर्थिक" अनुभव से कभी नहीं सीख सकते, मतलब यह कि आप लोग हमें राजनीतिक ज्ञान दीजिए।** आप, बुद्धिजीवी लोग, यह ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और आपका कर्त्तव्य है कि अभी तक आपने हमें जो ज्ञान दिया है, उससे सौ गुनी और हज़ार गुनी मात्रा में यह ज्ञान आप हमें दें; और आप यह ज्ञान हमें केवल उन दलीलों, पुस्तिकाओं और लेखों के रूप में ही न दें (जो अक्सर काफ़ी नीरस होते हैं – हमें स्पष्टवादिता के लिए माफ़ करें!), बल्कि हमारी सरकार और हमारे शासक वर्ग जीवन के तमाम क्षेत्रों में इस समय जो कर रहे हैं, उसका सजीव भण्डाफोड़ करते हुए आप हमें ज्ञान दें। अपनी इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने में थोड़ा और जोश दिखाइए और "आम मज़दूरों की क्रियाशीलता को बढ़ाने" की बातें थोड़ी कम कीजिए। आप जितना समझते हैं, हम उससे कहीं अधिक क्रियाशील हैं और हम उन माँगों तक के लिए भी सड़कों पर खुलेआम लड़ने में समर्थ हैं, जिनसे कोई "ठोस नतीजे" निकलने की उम्मीद नहीं है! और हमारी क्रियाशीलता को "बढ़ाना" आपका काम नहीं है, क्योंकि आप में तो ख़ुद क्रियाशीलता ही का अभाव है। **सज्जनो, स्वतःस्फूर्ति की पूजा थोड़ी कम कीजिए और ख़ुद अपनी क्रियाशीलता को बढ़ाने की चिन्ता ज़्यादा कीजिए!"**

लेनिन का यह लम्बा उद्धरण हमने यहाँ जानबूझकर दिया है। लेनिन स्वयं बतलाते हैं कि अर्थवादियों से मज़दूरों का यह काल्पनिक वार्तालाप सत्य पर आधारित है। यह उद्धरण दो टूक शब्दों में स्पष्ट कर देता है कि कम्युनिस्ट पार्टी के बुद्धिजीवियों का दरअसल कार्यभार है क्या और किस प्रकार अर्थवादी सबसे पिछड़े मज़दूर तत्वों की पूँछ पकड़कर इस कार्यभार से पल्ला झाड़ रहे हैं। साथ ही अर्थवादियों का यह तर्क कि मज़दूरों की राजनीतिक मसलों में कोई दिलचस्पी नहीं होती है, दरअसल स्वयं उनकी वैचारिक दरिद्रता को ही प्रदर्शित करता है। लेनिन के हवाले से हमने पहले भी ज़िक्र किया था कि "आर्थिक संघर्ष को ही राजनीतिक रूप देने" की अर्थवादी सोच राजनीतिक कार्य के क्षेत्र में स्वतःस्फूर्तता की पूजा करने की प्रवृत्ति को सबसे स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त करती थी। लेनिन बताते हैं कि कई बार आर्थिक संघर्ष स्वतःस्फूर्त ढंग से, अर्थात **"क्रान्तिकारी जीवाणुओं, यानी बुद्धिजीवियों"** के हस्तक्षेप के, वर्ग-चेतन सामाजिक-जनवादियों/कम्युनिस्टों के हस्तक्षेप के बिना ही, राजनीतिक रूप धारण कर लेता है। **लेकिन हिरावल पार्टी और कम्युनिस्टों का कार्यभार यहीं ख़त्म नहीं हो जाता है कि वह आर्थिक आधार पर राजनीतिक आन्दोलन संगठित करे; उनका कार्यभार इस ट्रेड यूनियनवादी राजनीति को कम्युनिस्ट राजनीतिक संघर्ष में बदलना और आर्थिक संघर्ष से "मज़दूरों में राजनीतिक चेतना की जो चिनगारियाँ" पैदा होती हैं, उनका इस्तेमाल इस मक़सद से करना है कि मज़दूरों को सामाजिक-जनवादी राजनीतिक चेतना के स्तर तक उठाया जा सके।** लेकिन लेनिन के समय में मार्तिनोव जैसे अर्थवादी और **हमारे समय में तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टियों से लेकर मज़दूर सहयोग केन्द्र मार्का अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी "वामपंथी" अर्थवादी मज़दूरों की**

**(पेज 14 पर जारी)**

## क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 13

अध्याय-12

# पूँजीवादी उत्पादन: श्रम प्रक्रिया के रूप में और मूल्य-संवर्धन प्रक्रिया के रूप में

• अभिनव

पिछले अध्याय में हमने देखा कि पूँजीवादी माल उत्पादन का आम सूत्र किस प्रकार साधारण माल उत्पादन से अलग होता है। हमने देखा कि पूँजीवादी माल उत्पादन में *पूँजीपति बेचने के लिए ख़रीदता है*, जबकि साधारण माल उत्पादन में *माल उत्पादक ख़रीदने के लिए बेचता है।* पहले का लक्ष्य है सस्ता ख़रीदना और महँगा बेचना और इसके ज़रिये मुनाफ़ा कमाना। दूसरे का लक्ष्य है अपने उपयोग की वस्तु ख़रीदने के लिए अपना माल बेचना।

पूँजीवादी माल उत्पादन के सूत्र के दोनों छोरों पर मुद्रा होती है, जो गुणात्मक रूप से समान वस्तु है क्योंकि दोनों ही मुद्रा है, जिनमें गुण के आधार पर कोई अन्तर नहीं किया जा सकता है; लेकिन इस सूत्र में परिमाणात्मक तौर पर वह भिन्न होती है। ज़ाहिरा तौर पर, कोई पूँजीपति मुद्रा की समान मात्रा निवेश करके मुद्रा की उसी मात्रा को प्राप्त नहीं करना चाहता है, बल्कि उसके ऊपर लाभ या मुनाफ़ा चाहता है। पूँजीपति जितनी मुद्रा पूँजी का निवेश करता है, वह अपेक्षा रखता है कि वह मुद्रा पूँजी उसके पास मुनाफ़े के साथ वापस आये। साधारण माल उत्पादन के आम सूत्र में दोनों छोरों पर दो भिन्न माल होते हैं, जो गुणात्मक तौर पर भिन्न होते हैं लेकिन उनके मूल्य का परिमाण समान होता है, क्योंकि माल विनिमय का आम नियम है समतुल्यों का विनिमय।

इस आम नियम की रोशनी में जब हम पूँजीवादी माल उत्पादन के सूत्र यानी, माल-मुद्रा-माल' (M-C-M') को देखते हैं, तो उसमें निहित अन्तरविरोध स्पष्ट हो जाते हैं। यहाँ भी समतुल्यों का ही विनिमय होता है। मुद्रा-माल-मुद्रा' (M-C-M') में पहला विनिमय यानी मुद्रा-माल (M-C) भी समतुल्यों का विनिमय होता है, जबकि दूसरा विनिमय यानी माल-मुद्रा' (C-M') भी समतुल्यों का ही विनिमय होता है। लेकिन इसके बावजूद M' में मूल पूँजी निवेश (M) के अलावा मुनाफ़ा (M' = M + m) भी शामिल होता है और वह M से ज़्यादा होता है। **इससे स्पष्ट हो जाता है कि मूल्य विनिमय की प्रक्रिया में नहीं बढ़ रहा है, बल्कि वह उत्पादन की प्रक्रिया में बढ़ रहा है।**

इसका मूल कारण यह है कि पूँजीपति के नियन्त्रण में एक ऐसा ख़ास माल है, जो कि उत्पादन की प्रक्रिया में ख़र्च होने के साथ मूल्य में बढ़ोत्तरी करता है। यानी, वह अपने उत्पादक उपभोग की प्रक्रिया में ही अपने मूल्य से ज़्यादा मूल्य सृजित करता है। वह माल है **श्रमशक्ति।** पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्ध की चारित्रिक अभिलाक्षणिकता ही यही है कि इसमें प्रत्यक्ष उत्पादकों को उनके उत्पादन के साधनों से वंचित कर दिया जाता है और इसलिए उनकी श्रमशक्ति एक माल बन जाती है, जिसे पूँजीपति को बेचने के लिए वह मजबूर होता है। इसके बिना उसका जीविकोपार्जन सम्भव नहीं होता है। यानी, प्रत्यक्ष उत्पादक अब एक उजरती या भाड़े के मज़दूर में तब्दील हो जाता है, जिसके पास अपनी श्रमशक्ति के अलावा कुछ भी नहीं होता है। उसकी श्रमशक्ति ही वह विशेष माल होती है जो उत्पादन की प्रक्रिया में अपने मूल्य से अधिक मूल्य पैदा करती है और वही बेशी मूल्य का स्रोत होती है।

इस अध्याय में हम पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया को ही विस्तार से समझेंगे। हम उसे एक **श्रम प्रक्रिया (labour process)** के रूप में भी देखेंगे जिसमें कि श्रमशक्ति एक विशेष भूमिका निभाती है और हम उसे **मूल्य-संवर्धन प्रक्रिया (valorization process)** के रूप में भी समझेंगे, जिसमें कि वह एक दूसरी विशेष भूमिका निभाती है। इन दोनों पहलुओं को समझकर ही हम पूँजीवादी उत्पादन, बेशी मूल्य के उत्पादन को समुचित रूप में समझ सकते हैं और पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े के स्रोत को उजागर कर सकते हैं, जो कि पूँजीवादी समाज में रहस्य के पर्दे के पीछे छिपा होता है।

## श्रम प्रक्रिया के रूप में पूँजीवादी उत्पादन

श्रम प्रक्रिया क्या है? **श्रम प्रक्रिया और कुछ नहीं बल्कि उपयोगी वस्तुओं या उपयोग मूल्यों के उत्पादन के लिए श्रम और प्रकृति का मेल या उनकी अन्तर्क्रिया है।** मनुष्य एकमात्र प्रजाति है जो सचेतन तौर पर प्रकृति को अपने श्रम से रूपान्तरित करके उत्पादन करती है। श्रम प्रक्रिया श्रम और प्रकृति के मेल से उपयोग मूल्यों का उत्पादन है और यह बात महज़ पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के दौर में ही नहीं बल्कि मानव सभ्यता के समूचे इतिहास के लिए सही ठहरती है, यानी तब से जब से इंसान ने उत्पादन शुरू किया।

श्रम प्रक्रिया के तीन अंग होते हैं: **पहला,** स्वयं श्रमिक या उत्पादक यानी मनोगत शक्ति; **दूसरा,** कच्ची सामग्री (raw material) हम जानबूझकर यहाँ 'कच्चा माल' शब्द का इस्तेमाल नहीं कर रहे हैं क्योंकि इससे भ्रम पैदा हो सकता है), यानी श्रम की विषय-वस्तु; और **तीसरा,** श्रम के उपकरण या औज़ार, यानी श्रम के साधन। कच्ची सामग्री दो प्रकार की हो सकती हैं: प्राकृतिक या उत्पादित। यानी, वे ज्यों की त्यों प्रकृति से भी प्राप्त हो सकती हैं, या फिर वे स्वयं श्रम की उत्पाद हो सकती हैं। श्रम के साधन यानी औज़ार या उपकरण वास्तव में मनुष्य के अंगों का ही विस्तार होते हैं। चाहे आप किसी भी औज़ार, उपकरण या यन्त्र के बारे में सोचें, चाहे वे जटिल हों या सरल हों, वे और कुछ नहीं बल्कि मनुष्य के अंगों का ही विस्तार हैं। श्रम के उपकरण वास्तव में मनुष्य के पास तब से हैं, जब उसने उत्पादन भी नहीं शुरू किया था। मसलन, पुरापाषाण युग के मनुष्य के पत्थर के औज़ार जिनसे वह शिकार करता था, या लकड़ी का टुकड़ा जिससे वह फल तोड़ता था, स्वयं और कुछ नहीं बल्कि श्रम के उपकरण ही थे और इस रूप में उसके अंगों का ही विस्तार थे। लेकिन अभी मनुष्य ने उत्पादन का आरम्भ नहीं किया था और वे इन औज़ारों का इस्तेमाल शिकार या कन्द-मूल एकत्र करने के लिए किया करता था।

श्रम प्रक्रिया स्वयं श्रम का ख़र्च होना या उसका उपभोग है, जबकि अपने उत्पादक उपभोग की इसी प्रक्रिया में श्रम स्वयं कच्ची सामग्री और श्रम के उपकरणों का उपभोग करता है या उन्हें ख़र्च करता है। इस प्रक्रिया में मनुष्य का श्रम ठोस भौतिक रूप यानी वस्तु रूप ग्रहण करता है या वस्तुकृत (objectify) होता है, कच्ची सामग्री का रूपान्तरण हो जाता है और वे उस उत्पाद में ही सम्मिलित हो जाती हैं। नतीजे के तौर पर हमारे सामने होता है श्रम का उत्पाद: एक उपयोग-मूल्य, जो मनुष्य की किसी आवश्यकता की पूर्ति करता है। श्रम के उपकरण भौतिक रूप में श्रम के उत्पाद में नहीं जाते, जबकि कच्ची सामग्री रूपान्तरित होकर भौतिक रूप में उत्पादित वस्तु में चली जाती है। श्रम का उत्पाद व्यक्तिगत उपभोग के लिए भी हो सकता है और वह स्वयं किसी अन्य उत्पाद के उत्पादन में लगने वाली सामग्री भी हो सकता है, यानी वह उत्पादक उपभोग के लिए भी हो सकता है। पहली स्थिति में, यानी व्यक्तिगत उपभोग की स्थिति में, उपभोग का परिणाम स्वयं व्यक्ति होता है, जबकि दूसरी सूरत में, यानी उत्पादक उपभोग की स्थिति में, उपभोग का परिणाम एक अन्य उपयोग मूल्य यानी उपयोगी उत्पाद होता है। ज़ाहिर है, मनुष्य भौतिक तौर पर अपने व्यक्तिगत उपभोग का ही परिणाम या उत्पाद होता है।

उपरोक्त विवरण आम तौर पर श्रम प्रक्रिया पर लागू होता है, चाहे हम किसी भी उत्पादन पद्धति की बात कर रहे हों। पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के आने के साथ श्रम प्रक्रिया में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। अब श्रमशक्ति एक माल में तब्दील हो चुकी होती है, पूँजीपति मज़दूर से उसकी श्रमशक्ति को ख़रीदता है और समूचे कार्यदिवस के दौरान वह उसे मनचाहे तरीके से इस्तेमाल करने का अधिकारी हो जाता है। इसके साथ ही श्रम प्रक्रिया पूँजी के मातहत हो जाती है। इसके पहले, प्रत्यक्ष उत्पादक श्रम प्रक्रिया पर नियंत्रण रखता था। काम की गति क्या हो, क्या पैदा करना है और कैसे पैदा करना है, कितना पैदा करना है, किस प्रकार के श्रम के उपकरणों का इस्तेमाल करना है, यह स्वयं प्रत्यक्ष उत्पादक तय करता था। लेकिन अब श्रम प्रक्रिया पर पूँजीपति का नियंत्रण होता है और ये सारे फैसले वह लेता है। वह उत्पादन प्रक्रिया को पूँजीवादी तर्क के अनुसार, यानी मुनाफ़े को अधिकतम बनाने के तर्क के अनुसार, श्रम प्रक्रिया को परिवर्तित करता है। श्रम प्रक्रिया को अधिकतम सम्भव सघन बनाया जाता है, उत्पादकता को बढ़ाया जाता है, ताकि कम से कम लागत में अधिक से अधिक मुनाफ़ा हस्तगत किया जा सके। अब "समय की कोई बरबादी" या सामग्री की कोई बरबादी बर्दाश्त नहीं की जाती। साथ ही, अब श्रम प्रक्रिया के फल, यानी कि उत्पाद का स्वामी भी पूँजीपति होता है, न कि प्रत्यक्ष उत्पादक। इस प्रकार पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के हावी होने के साथ श्रम प्रक्रिया पूँजी के मातहत हो जाती है और उसमें उपरोक्त परिवर्तन आ जाते हैं।

## मूल्य-संवर्धन प्रक्रिया के रूप में पूँजीवादी उत्पादन

श्रम प्रक्रिया मूलत: श्रम और प्रकृति की अन्तर्क्रिया के ज़रिये उपयोग-मूल्यों के उत्पादन की प्रक्रिया होती है। लेकिन पूँजीपति का लक्ष्य केवल उपयोग-मूल्यों का, यानी उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन नहीं होता है। पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन का लक्ष्य समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपयोगी वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन नहीं होता है, बल्कि मुनाफ़े के लिए उत्पादन होता है। पूँजीपति का लक्ष्य होता है उपयोग-मूल्यों का इस तरीके से उत्पादन की वह अपने द्वारा निवेशित आरम्भिक पूँजी के मूल्य से ज़्यादा मूल्य पैदा कर सके। यानी वह जितना मूल्य पूँजी के रूप में निवेशित करता है, उससे ज़्यादा मूल्य के मालों को पैदा कर सके और बेच सके। दूसरे शब्दों में, उसका लक्ष्य होता है मूल्य के साथ बेशी मूल्य का उत्पादन करना यानी मुनाफ़ा हासिल करना। लेकिन पूँजीपति यह लक्ष्य कैसे पूरा कर सकता है?

इसके लिए पूँजीपति अपनी आरम्भिक पूँजी का निवेश मज़दूरों की श्रमशक्ति और उत्पादन के साधनों को ख़रीदने में करता है। श्रमशक्ति और उत्पादन की स्थितियों के मेल से ही उत्पादन सम्भव होता है। पूँजीपति उत्पादन की स्थितियों (यानी उत्पादन के समस्त साधनों, भूमि, आदि) का मालिक होता है, जबकि मज़दूर अपने विशिष्ट माल का, यानी श्रमशक्ति का स्वामी होता है। उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पादन के साधनों का मूल्य मज़दूरों द्वारा संरक्षित किया जाता है और ज्यों का त्यों उत्पादित माल में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। उत्पादन के साधनों में निहित कुल मूल्य (जिसमें बेशी मूल्य भी शामिल होता है) को अतीत के श्रम द्वारा पैदा किया जा चुका होता है और पूँजीपति इन उत्पादन के साधनों को बाज़ार में ख़रीदता है। उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पादन के साधन गतिमान श्रम या जीवित श्रम की नुमाइन्दगी नहीं करते हैं, बल्कि मृत श्रम या अतीत के श्रम की नुमाइन्दगी करते हैं। यानी, अतीत में उनमें श्रम वस्तुकृत हो चुका होता है और मूल्य पैदा कर चुका होता है। अब वर्तमान उत्पादन प्रक्रिया में उत्पादन के साधन कोई नया मूल्य नहीं पैदा कर सकते हैं। **इसलिए ही हम कहते हैं कि उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पादन के साधन मृत श्रम या अतीत में वस्तुकृत हो चुके श्रम और वास्तवीकृत हो चुके मूल्य की नुमाइन्दगी करते हैं और वे कोई नया मूल्य नहीं पैदा कर सकते हैं। नया मूल्य केवल और केवल जीवित श्रम द्वारा ही पैदा हो सकता है।**

उत्पादन के साधनों के मूल्य को संरक्षित करना और ज्यों का त्यों माल में स्थानान्तरित करना श्रम की पहली नैसर्गिक ख़ूबी होती है। लेकिन यह प्रक्रिया भी एक *सामाजिक प्रक्रिया* होती है। **इसका क्या अर्थ है?** इसका अर्थ समझने के लिए एक मिसाल पर ग़ौर करते हैं। मान लीजिये कि प्रिण्टिंग के उद्योग में सभी पूँजीपति एक विशिष्ट उत्पादकता व गुणवत्ता वाली लोहे की ऑफसेट मशीनों का इस्तेमाल करते हैं। मान लें कि एक औसत लोहे की बनी ऑफ़सेट मशीन की कीमत रु. 10 लाख है। लेकिन एक ऐसा प्रिण्टर पूँजीपति है जिसकी सनक है कि वह सोने की ऑफसेट मशीन का इस्तेमाल करेगा! ज़ाहिर है, उसकी कीमत लोहे की ऑफ़सेट मशीन से कहीं ज़्यादा होगी, सम्भवत: 3-4 करोड़ के आस-पास। तो ऐसे में क्या उसके मालों में मशीन की उम्र पूरी होने के दौरान 3 या 4 करोड़ रुपये के बराबर मूल्य स्थानान्तरित होगा? नहीं! उसके मालों में भी लोहे की ऑफ़सेट मशीन के मूल्य जितना मूल्य ही स्थानान्तरित होगा। क्यों? क्योंकि किसी उद्योग में उत्पादन की औसत सामाजिक स्थितियों से यह तय होता है कि उत्पादन के साधनों का मूल्य किस रूप में मालों में स्थापनान्तरित होगा। **यानी, श्रम द्वारा मालों में उत्पादन के साधनों का वही मूल्य स्थानान्तरित हो सकता है, जो उस उत्पादन की शाखा में उत्पादन की औसत सामाजिक स्थितियों से निर्धारित होता है।**

श्रमशक्ति की दूसरी नैसर्गिक विशिष्टता होती है कि वह अपने ख़र्च होने की प्रक्रिया में उससे ज़्यादा अमूर्त श्रम देती है, जितना स्वयं उस श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक होता है। यानी, वह अपने ख़र्च होने या अपने उत्पादक उपभोग की प्रक्रिया में अपने मूल्य से ज़्यादा मूल्य सृजित करता है। श्रमशक्ति का उत्पादक उपभोग या उसका ख़र्च होने का परिणाम वास्तव में गतिमान श्रम या जीवित श्रम ही है।

**(पेज 14 पर जारी)**

# पूँजीवादी उत्पादन: श्रम प्रक्रिया के रूप में और मूल्य-संवर्धन प्रक्रिया के रूप में

(पेज 13 से आगे)

यह जीवित श्रम उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पादन के साधनों का उपभोग करता है, कच्चे मालों का स्वरूप बदल डालता है और इस प्रक्रिया में उनमें ही वस्तु-रूप ग्रहण करता है (objectify), जिसका नतीजा होता है माल का उत्पादन। उत्पादन की प्रक्रिया में ही वह उत्पादन के साधनों के मूल्य को संरक्षित कर उन्हें माल में स्थानान्तरित करता है। इस माल के मूल्य में उत्पादन के साधनों के मूल्य और श्रमशक्ति के मूल्य के योग से ज़्यादा मूल्य होता है, क्योंकि श्रमशक्ति अपने ख़र्च होने की प्रक्रिया में अपने मूल्य से ज़्यादा मूल्य पैदा करती है। यानी, मज़दूर अपनी मज़दूरी के मूल्य से ज़्यादा मूल्य एक कार्यदिवस के भीतर पैदा करता है। अगर ऐसा न हो तो कोई पूँजीपति किसी मज़दूर की श्रमशक्ति को नहीं ख़रीदेगा।

माल के मूल्य और पूँजीपति द्वारा निवेश की गयी कुल पूँजी, यानी श्रमशक्ति के मूल्य और उत्पादन के साधनों के मूल्य के योग, के बीच का अन्तर ही **बेशी मूल्य** या **अतिरिक्त मूल्य (surplus value)** होता है। मिसाल के तौर पर, मान लें कि एक मज़दूर को अपनी श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन, यानी अपने व अपने परिवार के जीविकोपार्जन के लिए रु. 40 प्रति घण्टा की आवश्यकता होती है। यदि कार्यदिवस की लम्बाई 8 घण्टे है तो उसे एक दिन में रु. 320 की दिहाड़ी के रूप में आवश्यकता होती है, ताकि वह अगले दिन फिर आकर कारखाने में खट सके। लेकिन वह 8 घण्टे के कार्यदिवस के आधे हिस्से यानी 4 घण्टे में ही रु. 320 के बराबर मूल्य, यानी अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य के बराबर माल पैदा कर देता है। इसके बाद के 4 घण्टे में उसी उत्पादकता व श्रम सघनता के साथ काम करते हुए वह रु. 320 के बराबर मूल्य बेशी पैदा करता है। यह रु. 320 अतिरिक्त मूल्य या बेशी मूल्य या surplus value है। यह पूँजीपति की जेब में मुफ़्त में जाता है, जिसके बदले में वह मज़दूर को कुछ भी नहीं देता। ऐसा क्यों सम्भव होता है?

इसलिए क्योंकि पूँजीपति ने मज़दूर से उसका श्रम नहीं ख़रीदा है, बल्कि श्रमशक्ति ख़रीदी है। अगर उसने मज़दूर से श्रम ख़रीदा होता, यानी, जितना श्रम मज़दूर से लिया होता, मूल्य के रूप में उतना ही श्रम मज़दूर को मेहनताने के तौर पर दिया होता, तो पूँजीपति के पास कोई मुनाफ़ा नहीं बचता। लेकिन चूँकि वह मज़दूर की श्रमशक्ति, यानी एक कार्यदिवस भर काम करने की क्षमता को ख़रीदता है और चूँकि यह क्षमता एक कार्यदिवस से कम समय में पुनरुत्पादित हो जाती है, इसलिए पूँजीपति कार्यदिवस के बाकी बचे समय यानी बेशी श्रमकाल में पैदा होने वाले मूल्य को बेशी मूल्य के रूप में हड़प लेता है। लेकिन औपचारिक तौर पर पूँजीपति और मज़दूर के बीच कोई असमान विनिमय नहीं हुआ होता। यहाँ मूल बात यह समझना है कि पूँजीपति मज़दूर से क्या ख़रीदता है: श्रम या श्रमशक्ति। श्रम को नहीं ख़रीदा जा सकता क्योंकि श्रम का कोई मूल्य नहीं होता; वजह यह कि श्रम स्वयं मूल्य का सारतत्व है, वही मूल्य है।

इस प्रकार मज़दूर पहले अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य को पैदा करता है और फिर उसके ऊपर बेशी मूल्य भी पैदा करता है। यह प्रक्रिया एक ही कार्यदिवस में सम्पन्न होती है और ऊपर से देखने पर इन दोनों के बीच का अन्तर फ़ौरन समझ नहीं आता है। मूल्य संवर्धन की प्रक्रिया एक एकल सजातीय कार्यदिवस में लगातार जारी रहती है और पहले उसमें श्रमशक्ति के बराबर मूल्य का उत्पादन होता है और फिर बेशी मूल्य का। कहने का अर्थ है कि मज़दूर जिस श्रमकाल में अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य पैदा करता है, यानी **आवश्यक श्रमकाल** (क्योंकि वह श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए अनिवार्य है) और **बेशी या अतिरिक्त श्रमकाल** (जिसमें वह पूँजीपति के लिए बिना किसी मेहनताने मुफ्त में बेशी मूल्य पैदा करता है) के बीच कोई भौतिक तौर पर दिखायी देने वाला अन्तर नहीं होता। वह दिक् और काल में निरन्तरतापूर्ण है, अलग-अलग नहीं। यह पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था की विशिष्टता होती है।

पहले सामन्ती या दास व्यवस्था में बेशी या अतिरिक्त श्रमकाल स्थान और समय में आवश्यक श्रमकाल से भिन्न होता था और इसलिए स्पष्ट और ठोस तौर पर दिखायी देता था। मसलन, एक निर्भर किसान हफ्ते में 4 दिन अपनी जोत पर खेती करता था और 3 दिन श्रम लगान (labour rent) के रूप में सामन्त की ज़मीन पर खेती करता था, जिसके लिए उसे कुछ भी नहीं मिलता था। या फिर वह जिंस लगान (rent in kind) यानी फसल के एक हिस्से के रूप में लगान देता था। दोनों ही सूरत में यह स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता था कि प्रत्यक्ष उत्पादक का आवश्यक श्रमकाल क्या है और अतिरिक्त श्रमकाल क्या है। लेकिन पूँजीवादी उत्पादन पद्धति में प्रत्यक्ष उत्पादक की श्रमशक्ति एक माल बन चुकी होती है, जिसे पूँजीपति ख़रीदता है और एक कार्यदिवस के दौरान उसका उत्पादक उपभोग करता है। अब श्रमकाल दो हिस्सों में बँटा हुआ दिखता नहीं है, बल्कि एक निरन्तर कार्यदिवस होता है, लेकिन इसी कार्यदिवस के भीतर आवश्यक श्रमकाल और अतिरिक्त श्रमकाल होते हैं और वैज्ञानिक विश्लेषण करके ही हम यह समझ सकते हैं कि मज़दूर जितने समय में अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य उत्पादित कर रहा है, वह आवश्यक श्रमकाल है और उसके अतिरिक्त वह जो काम कर रहा है वह अतिरिक्त श्रमकाल में किया जा रहा है।

जिस प्रकार उत्पादन के साधनों के मूल्य का मालों के मूल्य में स्थानान्तरित होना एक सामाजिक प्रक्रिया है, उसी प्रकार **श्रमशक्ति द्वारा बेशी मूल्य समेत कुल नये मूल्य का सृजन भी एक सामाजिक प्रक्रिया ही है**, क्योंकि यह मूर्त वैयक्तिक श्रम नहीं है जो मूल्य पैदा करता है, बल्कि अमूर्त सामाजिक श्रम है जो मूल्य पैदा करता है। इस साधारण अमूर्त श्रम को सामाजिक रूप से आवश्यक श्रमकाल में मापा जाता है, जो हर उत्पादन की शाखा में उत्पादन की औसत सामाजिक स्थितियों से तय होता है। यानी दी गयी उत्पादन की स्थितियों में किसी भी माल के उत्पादन में सामाजिक तौर पर औसतन कितना श्रमकाल लगता है, यही सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम को तय करता है। जैसा कि हमने पहले चर्चा की थी, अमूर्त श्रम का अर्थ ही यह होता है कि हम उसकी मूर्त वैयक्तिक विशिष्टताओं को नज़रन्दाज़ करते हैं, यानी उनसे अमूर्तन करते हैं, और उसके आम सामाजिक चरित्र पर ध्यान देते हैं। श्रम के मूर्त रूपों से अमूर्तन विनिमय की प्रक्रिया में नैसर्गिक तौर पर होता ही है क्योंकि इसके बिना अलग-अलग उत्पादकों के श्रम तुलनीय नहीं होंगे और विनिमय ही सम्भव नहीं होगा। विनिमय के लिए श्रम के मूर्त रूपों को नज़रन्दाज़ करना और उसे साधारण अमूर्त सामाजिक श्रम के रूप में देखना अनिवार्य है। यह साधारण अमूर्त सामाजिक श्रम ही है, जो मूल्य का सारतत्व है, जो मूल्य का सृजन करता है। बेशी मूल्य भी अमूर्त श्रम से ही सृजित होता है और पूँजीपति के मुनाफ़े का स्रोत और कुछ नहीं बल्कि मज़दूर वर्ग का श्रम ही है।

मार्क्स ने पूँजीपति वर्ग के ऐसे तमाम विचारकों के सिद्धान्तों की धज्जियाँ उड़ा दीं जो पूँजीपति द्वारा मुनाफ़े को हड़पे जाने को सही ठहराने के लिए मुनाफ़े को "प्रबन्धन का मेहनताना या मज़दूरी" बता रहे थे, या पूँजीपतियों के "संयम और बुद्धि का परिणाम" बता रहे थे। मार्क्स ने बताया यदि मुनाफ़ा प्रबन्धन आदि करने के बदले में पूँजीपति को मिलने वाली मज़दूरी या मेहनताना है, तो वह घटता-बढ़ता क्यों रहता है? उसे भी मज़दूरों की मज़दूरी की तरह तय यानी फिक्स्ड होना चाहिए। मज़दूरी मज़दूर की श्रमशक्ति की कीमत के अनुसार तय स्तर पर रहती है और उसमें आम तौर पर हर माह, या तिमाही या कभी-कभी साल भर तक में भी कोई परिवर्तन नहीं आता (हालाँकि महँगाई बढ़ने के साथ वास्तविक मज़दूरी घटती-बढ़ती रह सकती है)। लेकिन मुनाफ़ा तय या फिक्स्ड नहीं होता है। वह बाज़ार की स्थितियों के मातहत होता है और बढ़ता या घटता रहता है।

दूसरी बात, आज प्रबन्धन का काम भी कौन सा पूँजीपति करता है? उसके लिए भी पूँजीपति आज बौद्धिक श्रमिकों को रखता है और वह काम भी आज मज़दूर वर्ग का ही एक हिस्सा करता है। आज पूँजीपति केवल कूपन काटने, शेयर मार्केट में सट्टेबाज़ी करने और इनके ज़रिये मुनाफ़ा हड़पने का काम करता है। सामाजिक रूप से पूँजीपतियों का वर्ग आज ज़रूरी या उपयोगी नहीं रह गया है। उसे शासक वर्ग के राजनीतिज्ञ और सरकारें हमेशा "समृद्धि का सर्जक" बताती हैं, लेकिन वास्तव में समृद्धि के दो ही स्रोत होते हैं: प्रकृति और श्रम, और इन दोनों में ही पूँजीपति वर्ग का कोई योगदान नहीं है। न तो वह प्रकृति के पुनरुज्जीवन में कोई भूमिका अदा करता है और न ही वह किसी उत्पादक कार्रवाई में कोई श्रम करता है। उल्टे वह ज़िन्दा ही कुदरत और मेहनत को लूटकर रहता है। उसके सारे ऐशो-आराम और ऐय्याशी इसी लूट पर क़ायम होती है।

पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े का स्रोत बेशी मूल्य होता है और समूचे मूल्य के समान ही बेशी मूल्य भी मज़दूर वर्ग के श्रम से ही सृजित होता है, जिसे उत्पादन के साधनों पर अपने मालिकाने के बूते पूँजीपति वर्ग हस्तगत करता है। यह बेशी मूल्य मज़दूर द्वारा दिये गये बेशी श्रम या अतिरिक्त श्रम से पैदा होता है, जो वह उस आवश्यक श्रम को देने के बाद देता है, जिससे उसकी श्रमशक्ति के मूल्य के बराबर मूल्य पैदा होता है। इस सच्चाई को समझने के लिए जो कुंजीभूत कड़ी है वह है श्रमशक्ति के माल में तब्दील होने को समझना। इसके बिना आप पूँजीवादी उत्पादन पद्धति में आवश्यक श्रम और अतिरिक्त श्रम के बीच फ़र्क ही नहीं कर सकते हैं।

**अगले अंक में** अध्याय-13 में हम बेशी मूल्य के उत्पादन की समूची प्रक्रिया पर और गहराई से निगाह डालेंगे, पूँजीपति द्वारा निवेशित पूँजी के अलग-अलग हिस्सों की पड़ताल करेंगे, बेशी मूल्य की मात्रा व दर, निरपेक्ष बेशी मूल्य और सापेक्षिक बेशी मूल्य को समझेंगे।

# क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

(पेज 12 से आगे)

**अपनेआप उठती हुई राजनीतिक चेतना का स्तरोन्नयन करने के बजाय स्वत:स्फूर्ततावाद के सामने शीश नवाते हैं और मज़दूर वर्ग के किसी भी प्रकार के राजनीतिक शिक्षण-प्रशिक्षण से वैसे भाग खड़े होते हैं मानो प्लेग हो!**

लेनिन यह भी स्पष्ट करते हैं कि कम्युनिस्टों द्वारा ट्रेड यूनियन संघर्ष का नेतृत्व करने मात्र से ही कोई ट्रेड-यूनियनवादी आन्दोलन क्रान्तिकारी वर्ग आन्दोलन में परिवर्तित नहीं हो जाता है, बल्कि **सर्वांगीण राजनीतिक उद्वेलन** का सक्रिय रूप से प्रत्यक्ष नेतृत्व भी कम्युनिस्ट ताक़तों द्वारा करने की आवश्यकता है। इसका मतलब यह है कि अधिक से अधिक व्यापक राजनीतिक उद्वेलन और इसलिए सर्वांगीण राजनीतिक भण्डाफोड़ का संगठन करना सामाजिक जनवादी/कम्युनिस्ट गतिविधि का एक महत्वपूर्ण और सबसे ज़्यादा तात्कालिक ढंग से ज़रूरी कार्यभार है। इसके साथ ही लेनिन यह भी जोड़ते हैं कि मज़दूर वर्ग की राजनीतिक चेतना को उनके आर्थिक संघर्ष के *अन्दर से* नहीं बढ़ाया जा सकता है बल्कि **"मज़दूरों में राजनीतिक चेतना *बाहर से ही* लायी जा सकती है, यानी केवल आर्थिक संघर्ष के बाहर से, मज़दूरों और मालिकों के सम्बन्धों के क्षेत्र के बाहर से। वह जिस एकमात्र क्षेत्र से आ सकती है, वह राज्यसत्ता तथा सरकार के साथ सभी वर्गों तथा स्तरों के सम्बन्धों का क्षेत्र है, वह सभी वर्गों के आपसी सम्बन्धों का क्षेत्र है।"** ठीक इसी वजह से मज़दूरों तक राजनीतिक ज्ञान ले जाने के लिए केवल मज़दूरों के बीच जाने से सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए, बल्कि कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं को आबादी के सभी वर्गों के बीच जाना चाहिए और अपनी सेना की टुकड़ियों को सभी दिशाओं में भेजना चाहिए। **यह काम केवल और केवल सर्वहारा वर्ग की हिरावल पार्टी कर सकती है न कि मज़दूरों के विशिष्ट जन संगठन जैसे कि ट्रेड यूनियनें। पार्टी भी सर्वहारा वर्ग का ही संगठन है और उसका राजनीतिक केन्द्र है। लेकिन सर्वहारा विचारक के तौर पर कोई मज़दूर भी केवल स्वत:स्फूर्त मज़दूर चेतना का वाहक नहीं होता है, बल्कि वह एक क्रान्तिकारी बौद्धिक होता है, जो सर्वहारा वर्ग के क्रान्ति के दर्शन और विज्ञान को मज़दूर वर्ग के आन्दोलन में ले जाता है।** लेनिन की इस बात को न समझने पर कई अराजकतावादी व अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी बेवजह आहत हो जाते हैं और लेनिन पर आरोप लगा बैठते हैं कि वह मज़दूर को एक क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी की भूमिका निभाने में अक्षम मानते हैं! जबकि लेनिन सिर्फ यह कह रहे हैं कि मज़दूर वर्ग के आर्थिक संघर्षों से व मज़दूर आबादी के बीच से स्वत:स्फूर्त रूप से सर्वहारा विचारधारा का प्रश्न हल नहीं होता है। जब कोई इवान बाबुश्किन या जोहान्न फ़िलिप्पोव बेकर या कोई मज़दूर सर्वहारा विचारक की भूमिका निभाता है तो वह स्वत:स्फूर्त मज़दूर चेतना का प्रतिनिधित्व नहीं करता है, बल्कि एक क्रान्तिकारी वैज्ञानिक की भूमिका निभाता है, जो कि स्वत:स्फूर्त रूप से आर्थिक आन्दोलनों से नहीं पैदा होती है। इस रूप में क्रान्तिकारी विचारधारा मज़दूर वर्ग में "बाहर से" आती है क्योंकि इसे तभी समझा जा सकता है जबकि एक विचारक महज़ पूँजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के आपसी संघर्ष को ही नहीं, बल्कि समूचे वर्ग समाज में जनता के सभी वर्गों और सभी शत्रु वर्गों के बीच और उनके आपसी सम्बन्धों को समझता हो।

हम इस बिन्दु पर ज़ोर देकर इसलिए बात कर रहे हैं ताकि अर्थवादी तर्कों और दलीलों की सीमा ज़ाहिर हो सके। ऐसा नहीं है कि अर्थवाद की प्रवृत्ति हमेशा कोई अलग संगठन बनाकर सामने आती है। किसी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट संगठन के भीतर भी अर्थवाद की प्रवृत्ति सर उठा सकती है और इसलिए इसको लेकर विशेष तौर पर सचेत रहने की आवश्यकता है। लेनिन ख़ुद रूस के उदाहरण से बताते हैं कि जिस तरह के सामाजिक-जनवादी/कम्युनिस्ट अध्ययन मण्डल उस दौर में प्रचलित हुए थे उसमें अर्थवादी भटकाव थे। इन अध्ययन मण्डलों में मजदूरों के साथ इन सामाजिक-जनवादियों का सम्पर्क रहता था और वे तमाम पर्चे भी निकालते थे जिनमें कारख़ानों में होने वाले अनाचारों, पूँजीपतियों के साथ सरकार के पक्षपात और पुलिस के ज़ुल्म की निन्दा की जाती थी। लेकिन ऐसा बहुत कम देखने में आता

(पेज 15 पर जारी)

# विपक्ष का नया गठबन्धन 'इण्डिया' और मज़दूर वर्ग व मेहनतकश आबादी का नज़रिया

(पेज 11 से आगे)

किया है और कई जगह उन्हें कमज़ोर करने का प्रयास भी किया है। एनडीए से अपना असन्तोष व्यक्त करते हुए तेलुगु देशम पार्टी (टीडीपी) के चन्द्रबाबू नायडू भाजपा गठबन्धन से पहले ही बाहर हो चुके हैं। नायडू का कहना है कि भाजपा आन्ध्र प्रदेश में अपनी ज़मीन मज़बूत करने के लिए उनकी पार्टी टीडीपी के प्रतिद्वन्दियों को मदद पहुँचा रही है जिसमें वाईएसआर काँग्रेस और पवन कल्याण की जन सेना पार्टी को बढ़ावा देना शामिल है। अभी जुलाई 18 की एनडीए की बैठक में पवन कल्याण की जन सेना पार्टी शामिल भी थी। दक्षिण भारत में पहले ही भाजपा की पकड़ कमज़ोर है, कर्नाटक चुनावों में हार के बाद भाजपा को और झटका लगा है और टीडीपी के एनडीए में नहीं होने से दक्षिण में भाजपा की हालत खस्ता है।

किसानों के बीच बढ़ते असन्तोष और विधानसभा चुनावों में अपने प्रदर्शन को देखते हुए अकाली दल भाजपा से दूर ही है और कश्मीर से धारा 370 हटाने वाली भाजपा से करीबी महबूबा मुफ़्ती की पीडीपी को महँगी पड़ती इसलिए वह पहले ही पल्ला झाड़कर महागठबन्धन की नाव पर सवार हो चुकी है।

एनसीपी और शिवसेना दो धड़ों में बँट गये हैं। हालाँकि दोनों का एक धड़ा एनडीए के साथ है लेकिन निश्चित ही इनकी ताकत बँट गयी है और दोनों का दूसरा धड़ा *इण्डिया* के साथ है। महाराष्ट्र के लोगों में एनडीए में जाने वाले धड़ों के प्रति भी गुस्सा है। वहीं एनडीए का पुराना साझीदार जनता दल (यूनाइटेड) अब एनडीए से बाहर है और *इण्डिया* में शामिल है।

ठीक 18 जुलाई को ही अपने गठबन्धन की बैठक बुलाना भी 2024 चुनावों के प्रति भाजपा की असुरक्षा और अनिश्चितता को ही दर्शाता है। हालाँकि एनडीए गठबन्धन के सम्बन्ध में कई क्षेत्रीय पूँजीवादी पार्टियाँ बीच-बीच में अपनी नाराज़गी ज़ाहिर कर चुकी हैं लेकिन क्षेत्रीय पूँजीवादी पार्टियों के लिए चुनावी राजनीति तो तमाम समीकरणों और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के आधार पर ही निर्धारित होती है। जिसका पलड़ा भारी दिखता है क्षेत्रीय पूँजीवादी पार्टियाँ और उनके नेता उसका पक्ष चुनते हैं ताकि अपना हित साध सकें। फ़िलहाल इतना कहा जा सकता है कि भाजपा और आरएसएस को भी 2024 के चुनावों को लेकर आत्मविश्वास की कमी दिख रही है।

## भाजपा की बौखलाहट के परिणाम

कुछ लोगों का कहना है कि 38 पार्टियों के एनडीए गठबन्धन के पीछे की वजह ईडी के छापे हैं। यह आंशिक सत्य है। निश्चित तौर पर, ईडी व अन्य एजेंसियों द्वारा सताये जाने के कारण कई क्षेत्रीय दल भाजपा से कन्नी काट रहे हैं और कुछ डरकर भाजपा के साथ जा रहे हैं। लेकिन यह भी सच है कि ये क्षेत्रीय पूँजीवादी पार्टियाँ कुलकों, फ़ार्मरों, क्षेत्रीय पूँजीपतियों, व्यापारियों आदि की नुमाइन्दगी करती हैं। इनका नेतृत्व निकृष्ट कोटि के अवसरवाद और तुच्छ महत्वाकांक्षाओं से भरा रहता है। इसलिए इनका भाजपा के साथ जाना महज़ दबाव की बात नहीं है। ऐसा मौक़ापरस्त नेतृत्व भाजपा का दामन पकड़कर सत्ता का सुख भोगने के सपने भी देखता है। ऐसे में क्षेत्रीय पार्टियों में से कई विपक्षी गठबन्धन के लिए राह का रोड़ा भी बनेंगी।

बहरहाल, इन सबके बावजूद भाजपा 2024 की जीत को लेकर अब पहले की तरह आश्वस्त नहीं है। कठिनाई का अन्देशा होते ही संघ परिवार और भाजपा पूरे देश में दंगों की आग भड़काने में जुट गये हैं। मार्च-अप्रैल में रामनवमी के अवसर पर मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तराखण्ड, उत्तरप्रदेश और दिल्ली में दंगें करवाये गये। उत्तराखण्ड और दिल्ली के शाहबाद डेयरी में 'लव जिहाद' के नाम पर दंगों की स्थिति पैदा की गयी जिसमें से दिल्ली में 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' द्वारा जनता को एकजुट किये जाने के कारण इनके प्रयास नाकाम हो गये। उत्तराखण्ड में मुसलमानों को अपनी दुकानें बन्द कर वहाँ से जाने को मजबूर किया गया। मई से मणिपुर तो जल ही रहा था अब हरियाणा में दंगों की आग लगायी जा रही है।

## मज़दूर-मेहनतकश वर्ग और भाजपा की उग्र साम्प्रदायिक लहर

हम जानते हैं कि सभी दंगों में मरने वाले ग़रीब मज़दूर-मेहनतकश व निम्नमध्यवर्गीय लोग ही होते हैं। हिन्दू धर्म की तथाकथित रक्षा-सेवा में ग़रीबों के बेटे-बेटियों को बुलाया जाता है जबकि इन नेताओं के बेटे-बेटियाँ विलायत में पढ़ते हैं, ऊँचे पदों पर आसीन होते हैं या बड़े व्यापार व धन्धे करते हैं। अमित शाह का बेटा करोड़ों का व्यापार करता है और क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड का अध्यक्ष भी है, भाजपा सांसद रविशंकर प्रसाद की बेटी अमेरिका की बोस्टन यूनिवर्सिटी से एमबीए कर रही है। स्मृति ईरानी की बेटी गोवा में रेस्टोरेंट और शराबख़ाना चलाती है और सुषमा स्वराज की बेटी वकील है और अब भाजपा टिकट से चुनाव लड़ने जा रही है। भाजपा के एक भी बड़े नेता या मन्त्री के बच्चे बजरंग दल या विश्व हिन्दू परिषद में लाठी भाँजने नहीं जाते।

यही नहीं मुसलमानों के बीच मौजूद साम्प्रदायिक नेता भी ग़रीब-मज़दूर-मेहनतकश मुसलमान के बेटे-बेटियों को इस्लाम की तथाकथित रक्षा के लिए उकसाते हैं। दोनों तरफ़ मरने वाले ग़रीब-मज़दूर-मेहनतकश के बच्चे होते हैं और वोटों की रोटियाँ ऊपर बैठे नेता-मन्त्रियों की सिंकती है। धर्मगुरु या नेता ग़रीब-मज़दूर-मेहनतकश के बेटे-बेटियों के दिमाग में ज़हर भरकर इन्हें धर्म के नाम पर अर्ध-पागल बनाते हैं और फिर ग़रीब बस्तियों को दंगों की आग में झोंक देते हैं। आग दोनों तरफ़ सुलगायी जाती है क्योंकि दंगों की आग जितनी ज़्यादा भड़केगी वोटों की रोटियाँ उतनी ही अधिक सिकेंगी।

इसके अलावा भाजपा की 9 साल की सरकार मज़दूरों-मेहनतकशों व आम जनता पर सबसे भारी पड़ी है चाहे वे किसी भी धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र या राष्ट्रीयता के क्यों न हों। नौकरियाँ हैं ही नहीं, जिनके पास नौकरी है उन पर काम का दबाव बहुत ज़्यादा है। एक व्यक्ति से 3-4 लोगों का काम लिया जा रहा है और वेतन बेहद कम। लागत कम करने के नाम पर मज़दूरों की छँटनी चल रही है। शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं की बदहाल स्थिति किसी से छुपी नहीं है। आज देश की बड़ी आबादी के लिए दो जून की रोटी का जुगाड़ भी मुश्किल पड़ रहा है।

ऐसे में मज़दूर-मेहनतकश वर्ग को यह समझना होगा कि संघ-भाजपा की आक्रामक दंगाई राजनीति की मार सबसे ज़्यादा उन्हें ही सहनी होगी। उन्हें यह भी समझना होगा कि पूँजीवादी व्यवस्था उन्हें कोई विकल्प नहीं दे सकती है। आप तात्कालिक तौर पर मौजूदा फ़ासीवादी सत्ताधारी पार्टी को दण्ड देने के लिए किसी अन्य दल या गठबन्धन को चुन सकते हैं। इससे आपको मोदी सरकार और उसकी फ़ासीवादी नीतियों से तात्कालिक राहत मिलने से ज़्यादा कोई सम्भावना ही नहीं है। साथ ही फ़ासीवादी भाजपा अगर सत्ता से बाहर भी हो गयी, तो वह पूँजीपति वर्ग के आतंकी दस्ते और अनौपचारिक सत्ता का काम करेगी, मज़दूरों-मेहनतकशों पर हमले जारी रखेगी, दंगाई प्रचार चलाती रहेगी।

क्या आपको लगता है कि कांग्रेस या किसी अन्य बुर्जुआ चुनावी गठबन्धन की सरकार भाजपा और संघ परिवार की गुण्डा वाहिनियों पर कोई लगाम लगायेगी? नहीं। क्योंकि पूँजीपति वर्ग को इन फ़ासीवादी ताक़तों की ज़रूरत है, चाहे वे सत्ता में रहें या न रहें। साथ ही, किसी भी अन्य बुर्जुआ गठबन्धन की सरकार भी पूँजीपति वर्ग को संकट से निजात नहीं दिला सकती और न ही जनता को बेरोज़गारी, महँगाई, आदि से निजात दिला सकती है। उसके द्वारा किये जाने वाले दिखावटी कल्याणवाद के जवाब में पूँजीपति वर्ग और मज़बूती से दोबारा फ़ासीवादियों को ही फिर से सत्ता में लाने की जुगत भिड़ायेगा और जनता के बीच मौजूद आर्थिक व सामाजिक असुरक्षा का लाभ उठाकर फ़ासीवादी संघ परिवार और भी आक्रामक तरीके से टुटपुँजिया वर्गों का प्रतिक्रियावादी उभार पैदा करेगा, जिसकी लहर पर सवार होकर वह फिर से सत्ता में पहुँचेगा। यानी, पूँजीवाद के दायरे के भीतर फ़ासीवाद की निर्णायक हार किसी चुनाव के ज़रिये नहीं हो सकती।

इसलिए 2024 में कोई भी पार्टी या गठबन्धन चुनाव जीते, तात्कालिक तौर पर हमें ऐसे जुझारू जनान्दोलन खड़े करने पड़ेंगे जो हमारी रोज़गार और शिक्षा की तथा अन्य बुनियादी माँगों पर केन्द्रित हों, जो सरकार को मजबूर करें कि वह हमारी इन माँगों पर ठोस कार्रवाई करे। दूरगामी तौर पर, पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर व्यापक मेहनतकश जनता को बेरोज़गारी और महँगाई से आज़ादी नहीं मिल सकती है, जुझारू जनान्दोलनों के दम पर केवल कुछ फ़ौरी राहत हासिल की जा सकती है और इसलिए सवाल समूची पूँजीवादी व्यवस्था को ही नेस्तनाबूद करने और मज़दूर सत्ता और समाजवाद की स्थापना करने का है। इस दूरगामी लक्ष्य को पूरा करने के लिए मज़दूर वर्ग को अपनी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की ज़रूरत है और उसके निर्माण के काम में हमें आज से ही शामिल हो जाना चाहिए। हमारा स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष तभी निर्मित हो सकता है और तभी हम इस या उस पूँजीवादी पार्टी का पुछल्ला बनने की विडम्बना से मुक्त हो सकते हैं। फ़ासीवाद की निर्णायक पराजय भी ऐसी मज़दूर क्रान्ति के ज़रिये ही सम्भव है, जो मज़दूर सत्ता और समाजवाद की स्थापना करे।

# क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

(पेज 14 से आगे)

था कि क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास के बारे में, सरकार की घरेलू तथा विदेशी नीति के प्रश्नों के बारे में, रूस तथा यूरोप के आर्थिक विकास की समस्याओं के बारे में और आधुनिक समाज में विभिन्न वर्गों की स्थिति के बारे में भाषणों या बातचीत को संगठित किया जाता हो। और जहाँ तक समाज के अन्य वर्गों के साथ सुनियोजित ढंग से सम्पर्क स्थापित करने और बढ़ाने की बात थी, तो लेनिन के मुताबिक़ उसके बारे में तो कोई सपने में भी नहीं सोचताल था। इस समझदारी के हिसाब से आदर्श नेता एक समाजवादी राजनीतिक नेता के रूप में नहीं बल्कि ट्रेड यूनियन सचिव के रूप में अधिक काम करता है, जो कि और कुछ नहीं बल्कि स्पष्ट तौर पर राजनीतिकरण के अभाव को ही व्यक्त करता है। इसके बाद लेनिन एक बेहद ज़रूरी बात कहते हैं जो दरअसल जन संगठन और पार्टी संगठन के बीच की विभाजक रेखा को समझने के लिए भी अपरिहार्य है।

लेनिन लिखते हैं,

"सारांश यह कि "मालिकों और सरकार के ख़िलाफ़ आर्थिक संघर्ष" ट्रेड यूनियन का प्रत्येक सचिव चलाता है और उसके संचालन में मदद करता है। पर इस बात को हम जितना ज़ोर देकर कहें कम है कि *बस इतने से ही* सामाजिक-जनवाद *नहीं* हो जाता, कि **सामाजिक-जनवादी का आदर्श ट्रेड यूनियन का सचिव नहीं, बल्कि एक ऐसा जन-नायक (*ट्रिब्यून*) होना चाहिए, जिसमें अत्याचार और उत्पीड़न के प्रत्येक उदहारण से, वह चाहे किसी भी स्थान पर हुआ हो और उसका चाहे किसी भी वर्ग या स्तर से सम्बन्ध हो, विचलित हो उठने की क्षमता हो; उसमें इन तमाम उदाहरणों का सामान्यीकरण करके पुलिस की हिंसा तथा पूँजीवादी शोषण का एक अविभाज्य चित्र बनाने की क्षमता होनी चाहिए; उसमें प्रत्येक घटना का, चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो, लाभ उठाकर अपने समाजवादी विश्वासों तथा अपनी जनवादी माँगों को सभी लोगों को समझा सकने और सभी लोगों को सर्वहारा के मुक्ति-संग्राम का विश्व-ऐतिहासिक महत्व समझा सकने की क्षमता होनी चाहिए।"**

यह सर्वहारा वर्ग की पार्टी का राजनीतिक कार्यभार है कि वह केवल मज़दूर वर्ग को संगठित करने पर ही अपनी शक्तियों को केन्द्रित नहीं करती है बल्कि "सिद्धान्तकारों के रूप में, प्रचारकों, उद्वेलनकर्ताओं और संगठनकर्ताओं के रूप में" आबादी के सभी वर्गों के बीच जाती है। ऐसा करना सर्वहारावर्गीय दृष्टिकोण से पीछे हटना नहीं होता है बल्कि कम्युनिस्ट पार्टी यह काम ठीक सर्वहारा दृष्टिकोण से ही करती है। **यानी कम्युनिस्ट पार्टी जनता के सभी संस्तरों के बीच राजनीतिक प्रचार और उद्वेलन का काम करती है और इसी प्रक्रिया में सर्वहारा वर्ग बाक़ी मेहनतकश जनसमुदायों को नेतृत्व प्रदान करने की मंज़िल में पहुँच सकता है।** लेनिन यह भी पुनःरेखांकित करते हैं कि कम्युनिस्ट हर क्रान्तिकारी आन्दोलन का समर्थन करते हैं और इसे अपना कर्तव्य समझते हैं कि "अपने समाजवादी विश्वासों को एक क्षण के लिए भी न छिपाते हुए हम समस्त जनता के सामने आम जनवादी कार्यभारों की व्याख्या करें तथा उन पर ज़ोर दें। वह व्यक्ति सामाजिक-जनवादी नहीं है जो व्यवहार में यह भूल जाता है कि सभी आम जनवादी समस्याओं को उठाने, तीक्ष्ण बनाने और हल करने में उसे *और सब लोगों से आगे* रहना है।" **इसे ही राजनीतिक और विचारधारात्मक तौर पर हिरावल होना कहते हैं।** शेष चर्चा अगले अंक में जारी रहेगी।

*(अगले अंक में जारी)*

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

# “निजता की सुरक्षा” के नाम निजता के उल्लंघन को कानूनी जामा पहनाने वाला नया विधेयक : ‘डिजिटल पर्सनल डेटा प्रोटेक्शन बिल’

● अपूर्व मालवीय

अभी हाल ही में मोदी सरकार की कैबिनेट ने ‘डिजिटल पर्सनल डेटा प्रोटक्शन बिल’ को मंज़ूरी दी है। इस बिल के बारे में यह कहा जा रहा है कि इससे नागरिकों के “डाटा की सुरक्षा” की जा सकेगी और नागरिकों का डाटा चोरी या लीक होने पर सम्बन्धित कम्पनी, व्यक्ति या एजेंसी पर 250 से 500 करोड़ तक का जुर्माना लगाया जा सकेगा। लेकिन इस बिल के कई ऐसे प्रावधान हैं जो इस बिल की मूल अन्तर्वस्तु के ठीक उलट हैं। यह बिल सरकार और उसकी एजेंसियों को खुली छूट देता है कि “राष्ट्रीय सुरक्षा” के नाम पर किसी भी नागरिक की निजता में घुसपैठ कर सकें और उसके फ़ोन, कॉल, एसएमएस, फोटो, वीडियो, कम्प्यूटर आदि की छानबीन कर सकें। इस बिल में एक ‘डाटा प्रोटक्शन बोर्ड’ स्थापित करने का प्रावधान है जो कोई स्वायत्त संस्था न होकर पूरी तरह से केन्द्र सरकार के रहमो-करम पर निर्भर रहेगा। उसके सीईओ से लेकर बोर्ड के तमाम सदस्यों की नियुक्ति केन्द्र सरकार की निगरानी और उसकी सहमति से होगी। इस बोर्ड के कई सदस्य तो ख़ुद केन्द्र सरकार के अधिकारी होंगे।

डेटा सुरक्षा बिल न सिर्फ हमारी निजता के अधिकार का उल्लंघन करने की छूट देता है बल्कि यह सत्ताधारी पार्टी द्वारा जनता के राजनीतिक मतों, विचारों और चुनाव तक को प्रभावित करने की क्षमता को बढ़ा देता है।

आप सोच रहे होंगे कि आखिर इस बिल में ऐसा क्या है जो हमारी निजता, विचार, राजनीतिक मत, चुनाव आदि सभी प्रभावित होने लगे हैं। बहुत सारे लोगों को लग रहा होगा कि डाटा चोरी, निजता का अधिकार, लोकतन्त्र, चुनाव व सरकार एक कड़ी में जुड़े हुए नज़र ही नहीं आते! सबसे पहले डाटा और डाटा चोरी की बात करते हैं।

## क्या है डाटा और डाटा चोरी!

आपका निजी डाटा वह सारी सूचना है जो आप से जुड़ी हुई है। आप स्मार्टफ़ोन का इस्तेमाल करते हैं, आप इण्टरनेट का इस्तेमाल करते हैं, कम्प्यूटर पर कोई काम करते हैं, आपका आधार कार्ड है, बैंक में अकाउण्ट के साथ आप एटीएम का इस्तेमाल करते हैं, आपके फ़ोन में फ़ोटो, वीडियो, फ़ोन नम्बर, नाम-पते सेव हैं, आप कहाँ आते-जाते हैं, ऑनलाइन क्या ख़रीदारी करते हैं, ये सारी जानकारियाँ डाटा है। आप इण्टरनेट पर कुछ भी सर्च करते हैं, वह भी डाटा के रूप में सेव हो जाता है। इस डाटा का इस्तेमाल दो तरीके से होता है। पहला तरीका बाज़ार अपनी ज़रूरतों के लिए करता है और दूसरा सरकारें अपनी ज़रूरतों के लिए करती हैं। यानी आप इण्टरनेट पर कुछ भी सर्च करते हैं तो उस ब्राउज़र या गूगल को सब पता होता है कि आप क्या चाहते हैं! फेसबुक को पता है कि आप क्या सोचते हैं! आपकी जीवन शैली क्या है! आपकी फ्रेण्ड लिस्ट में कौन-कौन है! अमेज़ॉन को पता है कि आप क्या ख़रीदना चाहते हैं! आपका निवास स्थान क्या है!

आपके इण्टरनेट और स्मार्टफ़ोन पर की गयी कोई भी गतिविधि आपके बारे में बहुत कुछ बता सकती है। आपकी इन्हीं गतिविधियों, चाहतों, विचारों, इच्छाओं को डाटा मार्केट में बेच दिया जाता है। आप कुछ ख़रीदना चाहते हैं तो उससे सम्बन्धित विज्ञापन आपको लगातार दिखाये जाते हैं। आप कहीं घूमने की योजना बना रहे हैं तो इससे सम्बन्धित ट्रैवल कम्पनियों के विज्ञापन, एसएमएस आदि आपके स्मार्टफ़ोन में दिखायी देना शुरू हो जाते हैं।

इस डाटा को प्राप्त करने के दो तरीके हैं। पहला तरीका हैकिंग का है और दूसरा तरीका यह है कि आप जिन ऐप्स का इस्तेमाल या सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल या किसी वेब ब्राउज़र का इस्तेमाल करते हैं, उन्हीं के ऑपरेटर से आपका डाटा ख़रीद लिया जाये! और यह तरीका बहुत आसान और व्यापक है। जब भी आप किसी ऐप या ब्राउजर सॉफ्टवेयर का इस्तेमाल करते हैं तो वह ऐप या सॉफ्टवेयर आपसे कुछ परमिशन माँगता है। जैसे वह आपके फ़ोन की गैलरी, कॉण्टेक्ट, एसएमएस, कैमरा, माइक्रोफ़ोन, लोकेशन आदि एक्सेस करने की अनुमति माँगता है और आप उसे अनुमति दे भी देते हैं। इस तरह उस ऐप की पहुँच आपकी सहमति से आपके कॉण्टेक्ट लिस्ट या आपके फ़ोन या कम्प्यूटर के किसी भी हिस्से तक हो जाती है। डाटा ब्रोकिंग कम्पनियों का कारोबार यहीं से शुरू होता है। एक अनुमान के अनुसार यह कारोबार सालाना 10,000 करोड़ से भी ज्यादा का है।

हैकिंग द्वारा डाटा चोरी ज्यादातर बड़ी कम्पनियों, संस्थाओं या व्यक्तियों के साथ होती है। कुछ बड़े साइबर हमलों का शिकार कई जानी-मानी कम्पनियाँ रही हैं। एप्पल, माइक्रोसॉफ्ट से लेकर याहू, पिज़्ज़ा हट, उबर, ज़ोमैटो और कई बैंकों आदि की लम्बी लिस्ट है जिस पर साइबर हमले करके उनके करोड़ों यूज़र्स का डाटा चोरी कर लिया गया। साइबर हमले का शिकार ज़्यादातर बैंक, बीमा कम्पनियों, बड़े अस्पतालों, हेल्थकेयर वेबसाइट आदि को बनाया जाता है। 2016 में ही देश के 19 बैंकों के 65 लाख डेबिट कार्ड का डाटा चोरी हुआ था। आये दिन किसी न किसी कम्पनी के डाटा लीक की घटनाएँ सामने आती रहती हैं। कुछ सरकारी ऐप भी हैं जो नागरिकों का डाटा निजी कम्पनियों से साझा करते हैं। जैसे नितिन गडकरी के राष्ट्रीय राजमार्ग एवं सड़क परिवहन मन्त्रालय ने 25 करोड़ गाड़ी मालिकों के रजिस्ट्रेशन का डाटा निजी बीमा कम्पनियों को बेच दिया ताकि बीमा कम्पनियाँ उनकी गाड़ियों का बीमा कराने का विज्ञापन उन्हें दिखा सकें। इसी तरह कर्नाटक की सरकार का ऐप, आरोग्य सेतु ऐप, नमो ऐप जैसे कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। बीच-बीच में ‘आधार’ का भी डाटा लीक होने की ख़बरें आती रहती हैं जो नागरिकों के बायोमेट्रिक पहचान के साथ जुड़ा हुआ है। अगर ऐसे में कोई नागरिक अपनी निजता के उल्लंघन के मौलिक अधिकार को लेकर डाटा प्रोटक्शन बोर्ड में जाता है तो यह समझा जा सकता है कि उसे इस मौलिक अधिकार का कौन सा न्याय मिलने वाला है।

## डाटा चोरी और पूँजीवादी चुनावी राजनीति

2016 के अमेरिकी चुनाव में एक कम्पनी का नाम सामने आया था, कैंब्रिज एनालिटिका। इस पर आरोप था कि इसने 5 करोड़ अमेरिकी नागरिकों का फ़ेसबुक डाटा चोरी करके अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव को प्रभावित किया। इसमें वह सफल भी रही। आपको लग सकता है कि फ़ेसबुक का डाटा चोरी करके चुनाव को कैसे प्रभावित किया जा सकता है! तो चलिए जानते हैं कि यह हुआ कैसे?

2013 में कैम्ब्रिज एनालिटिका के एक रिसर्चर एलेग्जेंडर कोगन ने एक पर्सनैलिटी क्विज़ ऐप बनाया। ऐप को ज़्यादा लोगों तक पहुँचाने के लिए भारी रकम ख़र्च करके अलग-अलग व्यक्तियों के फ़ेसबुक वॉल पर इसे दिखाया गया। जब लोगों ने उस ऐप को डाउनलोड करना चाहा तो उन्हें फ़ेसबुक से लॉग इन करना पड़ा। ऐसा करते वक्त ऐप यूज़र का डाटा एक्सेस करने की अनुमति माँगी जाती थी। इससे हुआ यह कि धीरे-धीरे 5 करोड़ यूज़र्स के प्रोफ़ाइल की जानकारी कोगन तक पहुँच गयी। उसके बाद इन अमेरिकियों की आदतों-विचारों आदि का अध्ययन किया गया। इससे पता चला कि कौन क्या पसन्द करता है। फिर इन्हें अलग-अलग कैटेगरी में बाँटा गया। इनके फ़ेसबुक वॉल पर उनसे जुड़े हुए या उनकी पसन्द के कण्टेण्ट को भेजा जाने लगा। जैसे अगर किसी ने पिछले 10 सालों में रोज़गार से सम्बन्धित कोई स्टेटस डाला हो तो उसे डोनाल्ड ट्रम्प के रोज़गार वाले चुनावी वादे दिखाये जाते थे।

भारत के सन्दर्भ में बात करने से पहले आइए कैम्ब्रिज एनालिटिका का थोड़ा इतिहास जान लेते हैं। कैम्ब्रिज एनालिटिका ब्रिटेन की एक बड़ी डाटा एनालिसिस कम्पनी है। यह राजनीतिक और कॉरपोरेट ग्राहकों को उपभोक्ता रिसर्च से लेकर डाटा एनालिसिस की सेवाएँ देती है। यह कम्पनी दशकों से भारत और अमेरिका सहित दुनिया के तमाम देशों जैसे कि इटली, लातविया, यूक्रेन, अल्बानिया, रोमानिया, साउथ अफ्रीका, नाइजीरिया, केन्या, इण्डोनेशिया, फ़िलीपींस, थाईलैंड, ताइवान, कोलम्बिया, एण्टीगुआ आदि देशों के राजनीतिक दलों को अपनी सेवाएँ दे चुकी है। दिलचस्प बात ये है कि यह रक्षा क्षेत्र से जुड़े एससीएल ग्रुप का हिस्सा है। आजकल तमाम विकसित और विकासशील देशों की सेनाएँ सिर्फ हथियारों पर ही नहीं बल्कि नागरिकों के डाटा एनालिसिस पर भी काफ़ी भरोसा करती हैं। नाटो की सेना ने इसके लिए अपनी सेना में एक अलग ही यूनिट बनायी है। यूनिट का मकसद ही यही है जिन देशों में नाटो की फ़ौज लगी है वहाँ के नागरिकों की मनःस्थिति क्या है, इसका पता लगाया जाये। यह काम पहले गुप्तचर एजेंसियाँ किया करती थीं। लेकिन अब बाक़ायदा सेनाओं में यूनिट बनाकर नागरिकों के बिहेवियर पैटर्न डाटा यानी उनके बर्ताव के रुझानों के डाटा पर डाटा एनालिसिस की ट्रेनिंग दी जाती है।

भारत में कैम्ब्रिज एनालिटिका ने कांग्रेस और भाजपा दोनों ही पार्टियों को अपनी सेवाएँ दी हैं। इसकी भारतीय पार्टनर ओवलेनो बिजनेस इण्टेलिजेंस (OBI) पर कई राज्यों के विधानसभा चुनाव को प्रभावित करने का आरोप लगा है। इसमें कांग्रेस और भाजपा ने एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाना शुरू किया। बाद में ओबीआई की वेबसाइट ही खुलनी बन्द हो गयी। यह कम्पनी और इसके ग्राहक राजनीति के बड़े खिलाड़ी हैं। एक उदाहरण से समझते हैं।

साल 2019 में हैदराबाद में एक आईटी ग्रिड कम्पनी पर छापा पड़ा। इस कम्पनी के कार्यालय से तेलंगाना के रंगारेड्डी ज़िला सहित आन्ध्र प्रदेश राज्य के विभिन्न ज़िलों की फोटो सहित मतदाता सूचियाँ पुलिस ने बरामद की। यह बात हाईकोर्ट में तेलंगाना सरकार की ओर से उनके वकील महेश जेठमलानी ने बतायी। जो सूची चुनाव आयोग के पास होनी चाहिए वह आईटी ग्रिड के कार्यालय में क्या कर रही थी? आईटी ग्रिड कम्पनी के निदेशक डाकवरम अशोक तेलुगु देशम पार्टी के एक नेता के नज़दीकी माने जाते हैं। अशोक ने ही सत्ता पक्ष के लिए एक ‘सेवा मित्र’ ऐप तैयार किया जिसके लिए इन्होंने विशाखापट्टनम स्थित ब्लू फ्रॉग संस्था की मदद ली। सरकारी समझकर और सरकार की नीतियों के फ़ायदे के लिए इस ऐप को बड़े पैमाने पर लोगों ने डाउनलोड किया। इस ऐप से लोगों के आधार नम्बर, वोटर आईडी का पता चला जिसे सरकार ने आईटी ग्रिड के साथ शेयर किया। इस ‘सेवा मित्र’ ऐप द्वारा तेलंगाना और आन्ध्र प्रदेश की 7 करोड़ जनता का डाटा इकट्ठा किया गया। इस ऐप द्वारा लोगों के चुनाव में मतों के रुझान का पता किया गया और बड़े पैमाने पर लोगों के नाम वोटर लिस्ट से हटा दिये गये। यह मुद्दा अभी कोर्ट में है लेकिन हम ये नतीजा निकाल सकते हैं कि किस प्रकार लोगों के राजनीतिक अधिकारों और मूल्यों से खेला जा सकता है।

सोशल मीडिया साइट्स या अन्य किसी भी ऐप द्वारा लोगों की निजी सूचनाएँ, जानकारियाँ लगातार जुटायी जाती हैं। चाहे वह कोई व्यापारिक हित हो या राज्य एवं अन्य गुप्तचर एजेंसियों द्वारा लोगों की जासूसी करने का मसला हो। पिछले एक-दो सालों में व्हाट्सएप पर पूरी दुनिया में 1400 लोगों की जासूसी करने का मामला सामने आया था जिसके शिकार भारत के भी कई मानवाधिकार कार्यकर्ता, पत्रकार आदि हुए थे। फेसबुक ने इसके लिए इजराइल के एनएसओ ग्रुप पर आरोप लगाया था। एनएसओ ग्रुप ने पेगासस स्पाइवेयर (जासूसी करने वाला सॉफ़्टवेयर) के ज़रिये ऐसा किया था। कई मीडिया रिपोर्ट्स का दावा है सऊदी अरब के मौजूदा शहज़ादे मोहम्मद बिन सलमान ने फ़ेसबुक को एक अरब डॉलर की रकम सिर्फ इस बात के लिए अदा की थी कि फ़ेसबुक सऊदी राज परिवार के ख़िलाफ़ की जाने वाली पोस्ट को प्रमोट नहीं करे। फ़ेसबुक पर आस्ट्रेलिया की सरकार ने भी आरोप लगाया है कि उसने लोगों का डाटा चुरा कर चुनाव को प्रभावित करने की कोशिश की।

इससे हम समझ सकते हैं कि किस प्रकार राजनीतिक दल और सत्ताधारी पार्टियाँ अपने हित के लिए डाटा की निगरानी और उसको प्रायोजित करके अपने हित में इस्तेमाल कर सकती हैं। ऐसे में यह समझना बहुत कठिन नहीं है कि जो बिल सरकार और उसकी एजेंसियों को नागरिकों के डेटा तक बिना किसी बाधा के पहुँचने छूट देता हो, जिस बिल के तहत गठित होने वाले बोर्ड में सरकार का वर्चस्व हो और उस सरकार व उससे जुड़ी सत्ताधारी पार्टी का बड़ी-बड़ी देशी-विदेशी कम्पनियों से (जो इण्टरनेट और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के द्वारा हमारे डाटा तक पहुँच रखती हों) साँठ-गाँठ हो तो यह आसानी से समझा जा सकता है कि नागरिकों के डाटा की सुरक्षा और उनकी निजता के मौलिक अधिकार को कितनी “सुरक्षा” हासिल हो सकती है! और इसके उल्लंघन पर कितनी “निष्पक्षता” से न्याय या हर्जाना दिया जा सकता है!

दूसरे इस बिल के द्वारा फासीवादी भाजपा सरकार आरटीआई ऐक्ट को भी कमज़ोर करना चाहती है। इस बिल के आने के बाद कोई भी सरकारी अधिकारी या मत्री, विधायक या किसी सार्वजनिक पद पर रहने वाला अपनी निजता का हवाला देकर किसी भी तरह की सूचना देने से इनकार कर सकता है। इस बिल से भाजपा सरकार नागरिकों की निजता में सरकारी एजेंसियों की घुसपैठ व निगरानी को पुख़्ता कर रही है, दूसरे बड़ी देशी-विदेशी विज्ञापनकर्ता कम्पनियों की सेवा के साथ आरटीआई जैसे क़ानूनों पर हमला करके जनता के कुछ इने-गिने अधिकारों को भी ख़त्म करने की साज़िश को अमली जामा पहना रही है।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016